RNI No. 7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2023-25

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 62 अंक : 07 प्रकाशन तिथि : 25 जून कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 जुलाई 2025
शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

श्री क्षत्रिय युवक संघ चतुर्थ संघ प्रमुख व संरक्षक

पूज्य श्री भगवान सिंह जी रोलसाबसर

जन्म - 02-02-1944 • निर्वाण - 05-06-2025

श्री क्षत्रिय युवक संघ के
चतुर्थ संघ प्रमुख एवं संरक्षक

पूज्य भगवान सिंह जी रोलसाबसर

को शत् शत् नमन।

श्री राजपूत सभा, जयपुर

राम सिंह चन्दलाई अध्यक्ष, प्रताप सिंह राणावत उपाध्यक्ष, धीर सिंह शेखावत महामंत्री, अजयपाल सिंह पचकोड़िया संगठन मंत्री, पृथ्वी सिंह काली पहाड़ी सह मंत्री, प्रद्युम्न सिंह मूण्डरू कोषाध्यक्ष, अजयवीर सिंह जीरोता, अभय सिंह हाथोज, उधौ सिंह (एडवोकेट), गजराज सिंह कैलाई (एडवोकेट), गोपाल सिंह रोजदा, जोगेन्द्र सिंह सावरदा, महेन्द्र सिंह भंवरथला, मूल सिंह शेखावत, योगेन्द्र सिंह मेघसर, लोकेन्द्र सिंह लोटवाड़ा, वीरेंद्र पाल सिंह, श्रवण सिंह चौहान (लवाण), डॉ. सुमन कंवर बाबरा, संरेन्द्र सिंह नरुका (एडवोकेट), हर्षवर्धन सिंह शेखावत

मेवाड़ क्षत्रिय महासभा संस्थान

मीरा मेदवाद भवन, श्यामनगर, भुवाणा–प्रतापनगर, बाई पास रोड, भुवाणा, उदयपुर (राजस्थान)

श्री क्षत्रिय युवक संघ के
चतुर्थ संघ प्रमुख एवं संरक्षक

पूज्य भगवान सिंह जी रोलसाबसर

को शत् शत् नमन।

बालूसिंह कानावत अध्यक्ष, दिलीपसिंह शक्तावत महामंत्री, दिलीपसिंह राणावत उपाध्यक्ष, लोकेन्द्र सिंह चुण्डावत संयुक्त मंत्री, श्रीमती गोपालकुंवर भाटी सांस्कृतिक मंत्री, लालसिंह देवड़ा कोषाध्यक्ष, संगठन मंत्री प्रभुसिंह मोजावत, यशवर्द्धनसिंह राणावत, भगवतसिंह तंवर, ठा. भगवतसिंह चुण्डावत, इन्द्रपालसिंह सिसोदिया, दिलावरसिंह चौहान, विरेन्द्रसिंह चौहान, विक्रमसिंह राणावत प्रवक्ता, महेन्द्रनाथ चौहान मुख्य छात्रावास अधीक्षक

संघशक्ति

4 जुलाई, 2025

वर्ष : 62 अंक : 07

-: सम्पादक :-

राजेन्द्र सिंह राठौड़

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह जी रोलसाहबसर	05
❍ पूज्य श्री तनसिंह जी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैन सिंह बैठवास	07
❍ इतिहास की चोटों का.....	✍ श्री महेन्द्रसिंह तारातरा	11
❍ श्री भगवान सिंह सा रोलसाहबसर	✍ श्री शिवराज सिंह चौहान	13
❍ भक्ति, ज्ञान एवं शौर्य की त्रिवेणी-मीरांबाई...	✍ श्री राजेन्द्र सिंह राणीगाँव	16
❍ आत्म संयम	✍ सुश्री रश्मि रामदेरिया	19
❍ वीरमदेव सोनगरा	✍ डॉ. कमल सिंह बेमला	20
❍ भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों....	✍ श्री भँवरसिंह मांडासी	24
❍ डूंगरपुर	✍ श्री खींवसिंह सुल्ताना	25
❍ मन की शक्ति	✍ श्री महावीरसिंह हरदासकावास	26
❍ विचारों की जंजीरे	✍ रतन कंवर सेतरावा	28
❍ ऐतिहासिक गढ़ चित्तौड़गढ़	✍ श्री वीरेन्द्रसिंह तलावदा	29
❍ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

''एक युग का अवसान-पूज्य भगवान सिंह साहब को अन्तिम श्रद्धांजलि''

5 जून... अब यह महज एक तारीख नहीं, बल्कि इतिहास की उस अमिट रेखा का नाम बन गई है, जहाँ एक युग का अन्त और एक तपस्वी जीवन की पूर्णाहुति हुई।

6 जून- पूज्य भगवान सिंह साहब, जिनका जीवन त्याग, तपस्या और सेवा का पर्याय रहा, आज पंचतत्व में विलीन हो गए। लेकिन अन्तिम दर्शन हेतु उमड़ा जनसैलाब इस बात का साक्षी था कि वे केवल व्यक्ति नहीं, एक युग चेतना थे।

सुबह से ही संघशक्ति कार्यालय, जहाँ उनका जीवन संगठन के कार्य में समर्पित रहा, जनसागर में बदल गया। उपराष्ट्रपति, केन्द्रीय एवं राज्य मंत्री, सांसद, पूर्व व वर्तमान मुख्यमंत्री, विधायक, समाजसेवी, युवा, वरिष्ठजन-सभी ने आँखों में श्रद्धा और मन में विषाद लिए उपस्थिति दी।

जिस रथ में उनकी अन्तिम यात्रा निकाली, वह रथ लकड़ी और धातु से नहीं, बल्कि उनके आदर्श, शिक्षाओं और तपस्या से निर्मित प्रतीत हो रहा था। यह वह दृश्य था, जिसने हजारों लोगों की आत्मा को छू लिया-कोई भूखा-प्यासा सैंकड़ों किलोमीटर से चला आया, कोई कांपते पांवों से फूल चढा रहा था, तो कोई चुपचाप एक कोने में आँसू बहा रहा था।

हर चेहरा, हर आँख, हर मौन-यह कह रही थी:

''हमने एक नेता नहीं, एक मार्गदर्शक, एक पिता तुल्य गुरु, एक युग पुरुष को खो दिया है।''

उन्होंने समाज को संयम, समर्पण, सेवा और संगठन की अद्भुत परिभाषा दी। उनकी शिक्षाएँ अब केवल मंच की बातें नहीं रहीं, बल्कि हजारों लोगों की जीवन दिशा बन चुकी हैं।

- **श्रद्धांजलि सभाओं का दौर अनवरत जारी-** 7 जून से संरक्षक श्री को भावपूर्ण श्रद्धांजलि सभाओं का आयोजन राजस्थान, गुजरात, दिल्ली, हरियाणा में अनेक स्थानों पर किया जा रहा है। मुख्य बैठक संघशक्ति भवन, जयपुर में 7 जून से 15 जून तक आयोजित की गई। जिसमें प्रतिदिन सैंकड़ों की संख्या में लोग आकर अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे।
- **संस्कार निर्माण शिविरों का आयोजन-** ग्रीष्मावकाश के दौरान उच्च प्रशिक्षण शिविर का आयोजन दिनांक 18 मई से 29 मई तक बी.एन. शिक्षण संस्थान, उदयपुर में किया गया। जिसमें 457 शिविरार्थियों ने सहभागिता निभाई। प्रात: 4 बजे से रात्रि 10 बजे तक विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से शिविरार्थियों ने शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक क्षमताओं के विकास का अभ्यास किया।
- **संरक्षक श्री का अन्तिम प्रभात संदेश-** 22 मई को अपने अन्तिम प्रभात संदेश में संरक्षक श्री ने कहा ईशोपनिषद का प्रथम श्लोक हमारे लिए प्रेरणा बने। इसमें कहा गया है कि ईश्वर का वास पूरे अस्तित्व में है। संसार में जो कुछ भी दिखाई देता है सब उसी का है। हम उस पर गिद्ध दृष्टि न रखें बल्कि त्यागपूर्ण जीवन जीते हुए उस सब का सदुपयोग करें।
- **संघ प्रमुख श्री ने अपने विदाई उद्बोधन में कहा कि** पिछले 11 दिनों से आपने त्याग व तपस्या से जिस साधना शक्ति का संचय किया है उसे समाज को अर्पित करें।
- **मातृशक्ति का सात दिवसीय शिविर** दिनांक 23 मई से 29 मई तक बी.एन. शिक्षण संस्थान में

(शेष पृष्ठ 6 पर)

चलता रहे मेरा संघ

(मेवाड़ क्षेत्र के अपने प्रवास के समय माननीय भगवान सिंह जी (तत्कालीन संघप्रमुख) द्वारा एक स्थान पर दिए गए उद्‌बोधन का संक्षेप।)

बंगाल का एक किस्सा खूब चर्चा का विषय रहा है। कुछ लोगों ने नावों की दौड़ का निश्चय किया। यह भी निश्चय किया कि रात को दौड़ प्रारम्भ करेंगे और रातभर दौड़ जारी रहेगी, देखें कौन सबसे आगे रहता है। उन सभी ने यह भी सोचा कि रातभर दौड़ चालू रहेगी अत: थकान न आए इसके लिए भांग घोटी जाए। भांग घोटी गई, खूब देर तक खूब भांग पीते रहे और फिर जाकर नावों पर सवार हुए। पतवारें चलाना प्रारम्भ किया और नशे में जोर भी अजमाते रहे। पतवारें चलाते-चलाते थकने भी लगे तब तक सुबह हो गई। देखा कहाँ पहुँचे तो देखा वहीं पर हैं। कुछ भी इधर-उधर नहीं पहुँचे। पता चला लंगर तो खोले ही नहीं थे और पतवारें चलाते रहे तो वहीं के वहीं रह गए।

बन्धुओं! हमारा भी यही हाल नहीं है क्या? हम भी कदमताल कर रहे हैं। कदमताल में मेहनत तो हो रही है पर रहते वहीं के वहीं हैं। हमें भी वह सब कुछ नहीं मिलता जो हमें चाहिए। हमें चाहिए सुख और शान्ति। इसके लिए हम खूब परिश्रम करते हैं। खूब पैसा कमाते हैं, सत्ता में भागीदारी के लिए पसीना बहाते हैं। पर परम सुख और परम शान्ति नहीं मिलती। उसके लिए किए गये ये प्रयत्न कदमताल मात्र ही हैं। इसलिए जो चाहते हैं, वो प्राप्त नहीं होता। वह तब तक प्राप्त नहीं होगा जब तक लंगर नहीं खोला जाएगा।

लंगर खोलना है अपने निर्णय से। इसलिए निश्चय करें कि मैं संस्कारी बनूंगा और संस्कारी बनने के लिए निरन्तर सक्रियता से लगा रहूंगा। हम स्वयं यह निर्णय ले लें तो उत्साह का इतना संचार हो जाएगा कि असंस्कारी रह ही नहीं सकते। हम अपने निर्णय पर दृढ़ता पूर्वक सक्रिय रहें तो वह परम शक्ति हमें मार्ग पर बनाए रखेगी। पूरा समाज संस्कारी बने, परम सुख व परम शान्ति की ओर बढे, यह हमारी चाह है। इसके लिए मेवाड़ ही नहीं, अन्य क्षेत्रों में भी जाना पड़े तो जाएँ, अपनी क्षमता का सदुपयोग करें। हम आप तक आते हैं तो इसीलिए। इस निर्णय के लिए जो काम करने हैं वे करने ही हैं। निरंतर करने हैं। हमारी कोई विशेष योग्यता नहीं है, कोई वाकपटुता है न भाषण की कला, न मार्गदर्शन की क्षमता है, न कोई अध्यात्म का ज्ञान है, न ही कोई अन्य कर्मठता है। बस एक ही चीज है, वो भी भगवान की दी हुई सीख है कि निरन्तर और नियमित रूप से अभ्यास करते रहें। जो भगवान चाहता है वही हम करते रहें, यही हमारा पुरुषार्थ है। यही पुरुषार्थ उस सुख और शान्ति तक पहुँचाता है जो एक बार प्राप्त हो गई तो कभी कम नहीं होती, सदैव बनी रहती है।

संसार उस सुख और शान्ति के लिए प्रयत्न में लगा रहता है जो कभी आए तो कभी जाए। जब खीर खाते होंगे तो सुख मिलता होगा। पर खाए जाओ खीर तो क्या होगा? उल्टी हो जाएगी। बच्चों के साथ मौज मस्ती करते हैं, किए जाओ, बाहर निकलो ही मत नहीं मिलेगा वह सुख। इन सब में थोड़ी सहूलियत है। लेकिन परम सुख और परम शान्ति जो एक बार आ जाए और फिर जाए नहीं, वह तो लंगर खोलने से ही आती है। अपने लंगर खोलो कि संस्कारित होना मेरा ही काम है। इस बात की चिन्ता न करें कि अन्य कोई संस्कारित होता है या नहीं। पूज्य तनसिंह जी के गीत की एक पंक्ति है-**'निज को न बनाया तो जग रंच नहीं बनता।'** हम अपने आपको बना लें, यहीं से संस्कार की शिक्षा प्रारम्भ हो जाती है। यहीं से कुछ देने की प्रक्रिया शुरू होती है, कुछ लेने की प्रक्रिया शुरू होती है। जिस काम को करना चाहते हैं, उसे करना प्रारम्भ कर दें और बाद में कभी छोड़ें नहीं, निरंतर करते रहें।

इस काम को हम करते रहें यही समाज की चाह है,

यही राष्ट्र की चाह है, यही भगवान की चाह है, ऐसा अनुभव करता हूँ। यही चाह वाला मानव जाति और प्राणिमात्र को सुख पहुँचाने वाला हो सकता है। इसी चाह वाला मैं बनूं तो कहाँ से प्रारम्भ करूँ? किसी पाठशाला से नहीं, किसी का भाषण सुनने से नहीं, बस प्रारम्भ कर दूँ। प्रारम्भ कर दीजिए और यही चाह हमारे देश में भी बताते हैं तो देखें कि कितनी लम्बी बेल खड़ी हो जाती है। मैं उठूं, मेरे साथ मेरा समाज भी उठे, इस विश्वास के साथ प्रारम्भ कर दें। कोई न उठे तो चिन्ता नहीं, मैं तो उठा ही हूँ। श्री क्षत्रिय युवक संघ हमें यही प्रेरणा देता है और अनेक कार्यक्रम होते हैं। इसके लिए संघ यह भी चाहता है कि यहाँ शाखा लगनी चाहिए। जो बड़े शहर हैं वहाँ एक से ज्यादा शाखा लगें। समाचार जैसे हैं, उनके अनुसार तो अभी यहाँ कुछ हो नहीं रहा है।

क्षमतावान बनने का उपदेश देने और आशीर्वाद देने की क्षमता मुझ में नहीं है लेकिन आपके लिए मंगलकामना कर सकता हूँ। कि प्रभु आपको स्वस्थ रखें, सुखी रखें। लेकिन मेरी मंगलकामना से नहीं, आप सुखी हो सकते हैं यदि आपने संकल्प कर लिया है, लंगर खोल लिया है। इसी से संस्कार प्रारम्भ होंगे। पूज्य तनसिंह जी के साथ रहकर जो अनुभव किया, वही आपसे निवेदन किया है। आपने बताया कि आदमी मरता है तब तक विद्यार्थी रहता है, सीखने वाला रहता है। हम इसे स्वीकार कर लें। हम बच्चे से भी सीख सकते हैं। शिक्षक शिक्षार्थी ये भी सीख सकता है। पति भी अहंकार न करे, पत्नी भी सिखा सकती है, बिटिया भी सिखा सकती है, पड़ोस का व्यक्ति भी सिखा सकता है पर सीखने के लिए हमारे दरवाजे सदैव खुले रहने चाहिए। सही पथ पर चलने के लिए अपने पांवों को मजबूत रखें, सबको चलाना है, उसके लिए भी सक्रिय रहें। मार्ग में सबसे बड़ी बाधा मन की आती है। उस मन पर नियंत्रण रखने के लिए अभ्यास के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं है। यही भगवान का बताया हुआ मार्ग है। निरन्तर करते रहें तो घटना घटेगी, घट कर रहेगी। यदि हमने ठान लिया तो कौम का कल्याण निश्चित रूप से होगा। इस भारतवर्ष का कल्याण निश्चित रूप से होगा। संसार का कल्याण निश्चित रूप से होगा। क्योंकि प्रारम्भ हो गया है, करते रहेंगे तो यह परमेश्वर का आशीर्वाद है। ●

पृष्ठ 4 का शेष

समाचार संक्षेप

आयोजित हुआ जिसमें 240 बालिकाओं ने भाग लिया। शिविर के विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से क्षत्रियोचित नारी संस्कारों का अभ्यास किया। अपने विदाई उद्‌बोधन में जागृति बा हरदास-का-बास ने कहा कि श्रेष्ठ माता ही श्रेष्ठ संतान का निर्माण कर सकती है।

- **जयन्ती समारोह-** 16 मई को सम्राट पृथ्वीराज चौहान की जयन्ती विभिन्न स्थानों में उत्साहपूर्वक मनाई गई। हरिद्वार के बहादराबाद में चौहान क्षत्रिय महासभा के तत्वावधान में महान भारतीय सम्राट पृथ्वीराज चौहान की जयन्ती मनाई। कार्यक्रम में उपस्थित समाज बन्धुओं ने सम्राट पृथ्वीराज की प्रतिमा पर पुष्पांजलि अर्पित कर उन्हें नमन किया। वक्ताओं ने पृथ्वीराज चौहान के जीवन से राष्ट्र रक्षा, स्वाभिमान और साहस की प्रेरणा लेने की बात कही।
- **महाराणा प्रताप जयन्ती समारोह-** 29 मई को विभिन्न स्थानों पर स्वतंत्रता के पुजारी महाराणा प्रताप की जयन्ती समारोह आयोजित किये गये। जिसमें वक्ताओं ने महाराणा प्रताप की वीरता, साहस, स्वाभिमान, धर्म सहिष्णुता तथा देश प्रेम की प्रशंसा की।
- चित्तौड़गढ़ में 13 मई को राजपूत प्रतिभा सम्मान समारोह आयोजित किया गया जिमसें विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रदर्शन करने वाली समाज की 76 प्रतिभाओं का सम्मान किया गया।

●

पूज्य श्री तनसिंह जी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

भगवान विष्णु राजा मान्धाता से कहते हैं कि–

''सर्वधर्म करं क्षात्रं लोक श्रेष्ठं सनातनम्।
शाश्वदक्षरपर्यन्तमक्षरं सर्वतोमुखम्।।''

(म.भा.शां.रा.घ.पर्व, अध्याय 64,30)

अर्थात् ''क्षात्रधर्म सर्व धर्मों का प्रवर्तक और रक्षक, इस लोक में श्रेष्ठ, सनातन, नित्य, अविनाशी और मोक्ष पर्यन्त ले जाने वाला सर्वतोन्मुखी धर्म है।''

ऐसे श्रेष्ठ क्षात्र धर्म को धारण करने वाले क्षत्रिय हैं। गीता के अध्याय 18/43 में क्षत्रिय के स्वाभाविक गुण बताये हैं–

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।

अंग्रेज इतिहासकार कर्नल टॉड ने राजपूत, क्षत्रियों के विषय में लिखा है–

''राजपूतों जैसी असाधारण चरित्र वाली जगत में अन्य कौनसी जाति है जो भारत पर सदियों से भारी अत्याचार होने के बावजूद अपने देश की सभ्यता और अपने पूर्वजों के आचार–विचारों का रक्षण करने में समर्थ हुई हो।''

इस महान असाधारण चरित्र वाली क्षत्रिय जाति के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंह जी ने जो कहा, उन्हीं की जुबानी–

''इतिहास में काल ने जब कभी त्याग और बलिदान की मांग की, उस मांग को पूरा करने के लिए क्षत्रिय परम्परा ने अचिन्त्य बलिदान किए, अद्वितीय वीरता और साहस के उदाहरण रखे, बिना सिर लड़ते रहना, जीवित चिताओं में जल जाना और मरने के समय केशरिया बाना पहनकर हंसी खुशी से देश धर्म पर बिना एक कदम भी पीछे हटाये सर्वस्व उत्सर्ग करने की निराली परम्परा की यह क्षत्रिय जाति जन्मदाता है। संसार की किसी भी जाति का ऐसा कोई भी इतिहासकार नहीं है, जिसने क्षत्रिय के शौर्य, चरित्र, महानता और वीरता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा न की हो। स्वयं शत्रु भी श्रद्धा से नतमस्तक होता था। ऐसा उज्ज्वल इतिहास जिसका हो, उनका यह हसर, जिसे संसार की उच्चतम अवस्था से गिराकर निम्नतम अवस्था में पटक दिया गया और आज उनकी भिखारी सी स्थिति कैसे बन गयी? आओ, मेरे भाई! आज अपन इस बात पर थोड़ा विचार करें।''

क्षत्रिय कौम के पराभव के अनेकों कारण रहे हैं। इन कारणों में पराभव का मुख्य कारण एक ''विभीषण की शक्ति।'' इस विभीषण की शक्ति ने शत्रु के साथ मिलकर इस कौम को जितना नुकसान पहुँचाया है, अन्य किसी ने इतना नहीं।

इस 'विभीषण की शक्ति' के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंह जी ने जो कहा, उन्हीं की जुबानी–

''मेरे भाई! तुम्हें एक रहस्य की बात बताता हूँ। हमारी यह कौम अजेय है। कोई शक्तिशाली से भी शक्तिशाली इसे पराजित नहीं कर सकता। इसे केवल एक ही शक्ति पराजित कर सकती है, और वह है विभीषण की शक्ति। इतिहास के सभी पन्नों को मैंने टटोल डाला है और मैं इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ, कि यह रहस्य सोलह आना सत्य है। आज के युग को भी देख लो न! जो कोई और जहाँ कहीं हमारी जाति का शोषण हो रहा है, उस शोषण में शत्रु के साथ हमारे किसी न किसी विभीषण का अवश्य हाथ होगा। भविष्य में भी यदि कभी इस जाति का पतन होगा तो उसमें भी उसी के किसी विभीषण का सहयोग होगा। मैं इसलिए तो तुम्हें बार–बार कह रहा हूँ कि जब कभी कोई विभीषण बनता है, तो पहले इसी प्रकार

उदासीन बनकर फिर विरोध करता है, किन्तु विरोध में वह कभी जीत नहीं सकता, तब वह अपनी प्रतिष्ठा का सवाल बनाकर शत्रु से मिलता है और यही है हमारी कौम के सर्वनाश की दर्दनाक कहानी का प्रारम्भ।''

निसंदेह यह राजपूत कौम अजेय है। इसे कोई नहीं हरा सकता। यह जब कभी हारी है तो घर के भेदिये विभीषणों की वजह से। इतिहास को पलट कर देखें तो पायेंगे कि इस कौम में विभीषण की परम्परा चलती आ रही है। इतिहास इसका गवाह है।

बाहरी शत्रु की परम्परा इतनी बुरी नहीं जितनी विभीषण की। यह स्वाभाविक है कि बाहरी शत्रु तो आते-जाते रहेंगे, पर विभीषण की परम्परा खत्म होनी चाहिए क्योंकि घर का भेदिया ही हमारे शत्रु का बल है।

शहाबुद्दीन गौरी और पृथ्वीराज चौहान के बीच तराइन का द्वितीय युद्ध चल रहा था। पृथ्वीराज चौहान का सामन्त हैहुलराय शाहबुद्दीन गौरी से जा मिला। महाबली चामुण्डराय पृथ्वीराज चौहान का सामन्त था, जो बल में अतुलनीय था और उनका निशाना भी अचूक लेकिन किसी कारणवश पृथ्वीराज चौहान ने अपने इस सामन्त की आँखों पर पट्टी बंधवा दी थी, उस समय उसने स्पष्ट कर दिया था कि अब वह युद्ध में केवल एक ही बाण चलायेगा। महाबली चामुण्डराय की आँखों की पट्टियाँ खोल दी गई। सामने घर का भेदिया हैहुलराय और शत्रु शाहबुद्दीन गौरी, दोनों नजर में थे। चामुण्डराय को आज्ञा दी गई कि हैहुलराय को बाण द्वारा मार डालो। इस पर चामुण्डराय की क्या राय थी और पृथ्वीराज चौहान क्या चाहते थे, उनके बीच जो संवाद चला, सुने-पूज्य श्री तनसिंह जी की जुबानी-

''मुझे मुहम्मद गौरी दिखाई दे रहा है, उसी के लिए क्यों नहीं आज्ञा देते, ताकि न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।''

''रावण की परम्परा बुरी नहीं क्योंकि वह स्वाभाविक है। युग-युग में राक्षस होते आए हैं और होते रहेंगे। वे सत् का विरोध करेंगे ही। गौरी चला गया या मर गया तब भी इस सुखी भारत को दु:खी बनाने के लिए अनेक आते रहेंगे, लेकिन विभीषण की परम्परा बन्द होनी चाहिए। हैहुलराय हमारा सामन्त था और आज युद्ध के समय गौरी से मिल गया है। इस देशद्रोहिता की खतरनाक परम्परा को बन्द होना चाहिए। अचूक बाण दुश्मन पर नहीं, घर के भेदिये पर चलाओ। दुश्मन को मारने की अपेक्षा उसके बल को नष्ट कर दो। हमारे घर का भेदिया ही दुश्मन का बल है।''

''लेकिन गौरी?''

''तुम हैहुलराय को मारो और गौरी को मैं।''

एक ओर विभीषण जो शत्रु से जा मिला। खानवा में राणा सांगा और बाबर के बीच युद्ध चल रहा था। राणा सांगा की सेना का सेनापति शिलादित्य जो राणा सांगा का बहनोई था, चलते युद्ध में तीस हजार सैनिकों के साथ बाबर से जा मिला, यह भीतर घात ही राष्ट्र व समाज के पतन का कारण है। इस भीतर घात का क्षोभ राणा सांगा को खाये जा रहा था। ऐसे देशद्रोही गद्दार को दण्ड देने का समय ही राणा सांगा के पास न बचा। उनकी जीवन बाती बुझने को थी, वो बोल उठे, ''काश! मैं कुछ और जी सकता होता।'' अपने इस क्षोभ को अपने सेवादार सरदारों के समक्ष व्यक्त करते हुए उन्होंने जो कहा-पूज्य श्री तनसिंह जी की जुबान से-

''वह देखो-विभीषण जा रहा है। तीस हजार घुड़ सवारों के साथ बड़ी बेशर्मी से बाबर की ओर जा रहा है और खानवा के युद्ध क्षेत्र में उसके देशद्रोही घोड़ दौड़ रहे हैं और उनकी टापें मेरे कलेजे पर पड़ रही हैं। मेरे प्रयासों से इतिहास बना था कि हम नि:स्वार्थ देश भक्त हैं, भारत के स्वातन्त्र्य के लिये लड़ रहे हैं, परस्पर हम एक हैं, पर सरहदी के घोड़ों की टापों से इस नये इतिहास के पृष्ठ कुचले जाकर फट रहे हैं।

मुझे यह क्षोभ सता रहा है कि जीवन भर मैंने बाहर के मोर्चों पर लड़ाई लड़ी है, लेकिन पीठ पर वार होने के विरुद्ध मोर्चे को बनाया ही नहीं। खानवा की जीत मुश्किल

न थी और न है, मुश्किल तो शिलादित्य के मोर्चे को तोड़ना था, इसलिए मुश्किल था कि अब तक इधर ध्यान ही नहीं रहा। यहाँ खानवा की जीत भी कठिन नहीं थी, लेकिन मुश्किल तो है अपने ही लोगों पर अविश्वास करना। मेरे सामन्त आज मुझे जहर न देते होते, तो जीवन की हार जीत में बदलना कठिन नहीं। उस दिन रायसिन का शिलादित्य बाबर के साथ न मिलता होता, तो विजय को कौन रोकता? किसी भी मोर्चे को अरक्षित छोड़कर कोई भी लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। घर का भेदी तो बाहर के शत्रु से ज्यादा खतरनाक है। राम की सेना से कहीं अधिक खतरनाक विभीषण था।

''मेरे सगे-सम्बन्धियों ने धोखा दिया, मेरे साथी ने धोखा दिया, राजपूत सिपाही ने धोखा दिया। और तो और मेरे सरदारों ने भी ऐसे कठिन समय में मुझे धोखा दिया, परन्तु मैंने आज तक किसी को धोखा नहीं दिया। मैंने न इतिहास को धोखा दिया और न कर्तव्य को। मैंने उन असंख्य साथियों को भी धोखा नहीं दिया जिन्होंने मेरे कन्धे से अपना कन्धा मिलाकर मरने और जीने के भयानक जुए में अपने जीवन और सर्वस्व की बाजी लगा दी थी।''

अपने एहसानबद्ध लोगों का कर्जा न चुकाने का अफसोस जताते हुए राणा सांगा ने जो कहा-पूज्य श्री तनसिंह जी की जुबानी-

''वर्षों तक पंवार कर्मचन्द ने मेरा पालन-पोषण किया, दुखों में मेरा साथ दिया, मुझे अपना दामाद भी बनाया पर मैं तो उसका अहसास भी नहीं चुका सका। हसन खाँ मेवाती मुसलमान होकर भी मेरे लिए लड़ा। चन्द्रभाण और माणकचंद चौहान दूर पूर्व से मेरा साथ देने आए। मारवाड़ के राव गांगा की ओर से रायमल, बीकानेर के राव जैतसी के पुत्र कल्याणमल, आम्बेर के राजा पृथ्वीराज और राजस्थान के किस रजवाड़े के राजा ने सहयोग नहीं दिया? सादड़ी के झाला अज्जा ने तो मेरा छत्र चंवर धारण कर मेरे लिये युद्ध किया। हे भगवान! मैं कितने लोगों के अहसानों का ऋण सिर पर लिए जा रहा हूँ। चंदेरी के मेदनीराय का अहसान चुकाने का अवसर आया था और साथ ही बाबर को भी छठी का दूध याद दिलाता पर अफसोस, मुझे मेरे सरदारों ने जहर दे दिया। मैंने जिन्हें अमृत पिलाया, मुझे क्या पता था कि मेरे अमृत के प्याले ही किसी दिन मेरी इस प्रकार की बेबस मौत के कारण होंगे, परन्तु मेरी आत्मा तो मेरे मरने के बाद भी खानवा के युद्ध-क्षेत्र में घोड़े दौड़ाती रहेगी।

''दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने जालोर के किले की घेराबन्दी कर रखी थी। पिछले तीन दिनों से अनवरत युद्ध जारी था। इसी बीच वह घट गया, जिसकी कल्पना किसी ने नहीं की थी। एक बार फिर मोह के कुत्सित प्रयासों के आगे क्षत्रियत्व छला गया। एक ओर देशद्रोही गद्दार ने अपनी ही कौम व राष्ट्र के साथ छल किया। बीका दहिया बिक गया और उसने किले का राज बताते हुए सोने से महंगे स्वर्णगिरी को राई के भाव बेच दिया। उस देशद्रोही को जालोर दुर्ग का प्रलोभन महंगा पड़ा। उसी की देशभक्त धर्मपत्नी वीरांगना हीरा देवी ने उस देशद्रोही का सिर धड़ से अलग कर देश भक्ति का सटिक प्रमाण दिया।''

पूज्य श्री तनसिंह जी भी इन विभीषणों से अछूते नहीं रहे। इन मौका परस्त आस्तीन के सांपों ने पूज्य श्री के साथ भी छल किया, इन्हें धोखा दिया। मौका पड़ते ही इन आस्तीन के सांपों ने गिरगिट की तरह अपना रंग बदला और पूज्य श्री तनसिंह जी के विरुद्ध खड़े हो गये। पूज्य श्री की छवि खराब करने व श्री क्षत्रिय युवक संघ को नुकसान पहुँचाने में इन विभीषणों ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। इन विभीषणों के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंह जी ने हमें जो सख्त निर्देश दिया है, उन्हीं की जुबानी-

''रावण की परम्परा उतनी बुरी नहीं जितनी विभीषण की परम्परा है। शत्रुओं की परम्परा स्वाभाविक है। दुश्मन तो होते आए हैं और आते-जाते रहेंगे। शत्रुओं को दण्ड दिया जाना चाहिए लेकिन ध्येय पूर्ति के लिए आवश्यकतानुसार क्षमा भी कर देना चाहिये। लेकिन घर के

छिपे शत्रु को कभी क्षमा नहीं किया जाना चाहिये क्योंकि जो परिस्थितियाँ उसे विश्वासघाती बनाती है, वे परिस्थितियाँ फिर पैदा हो सकती हैं।''

पूज्य श्री तनसिंह जी हमारे जीवन के प्रेरक, सम्बल और मार्गदृष्टा हैं। इनके अनुसार विभीषण की परम्परा को खत्म करने के लिये हमें घर भेदियों को न तो भूलना है और न माफ करना है। जब तक भूलते रहेंगे, माफ करते रहेंगे, तब तक यह शृंखला आगे चलती रहेगी और यह कौम इनसे दगा खाती रहेगी और ये भीतर घात कर घात करते रहेंगे। भीतर घात करने वाले इन आस्तीन के सांपों को कभी बक्सा नहीं जाना चाहिए। घर का भेदिया चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, वो हमारे लिए त्याज्य है, धूल समान है। इन्हें कभी माफ नहीं किया जाना चाहिए। ये दण्ड के भागीदार हैं। इन्हें दण्ड दिया जाए, इनकी चलती परम्परा को खत्म किया जाए। इन्हें कुचलने में लेशमात्र भी देर न की जाए। ये कभी दया के पात्र नहीं हो सकते। इनको कुचल देना ही राष्ट्रभक्ति है। ये इसी लायक हैं। जालोर के युद्ध में हीरा देवी के द्वारा स्थापित आदर्श का अनुसरण करें।

श्रद्धेय श्री आयुवानसिंह जी के अनुसार–

''देश अथवा समाज के गद्दारों को हमें कभी आदर की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। जो एक के प्रति गद्दारी और विश्वासघात कर सकता है, वह समय आने पर आपके साथ ही गद्दारी और विश्वासघात अवश्य करेगा, इसलिए इस प्रकार के लोगों को कभी मुँह लगाकर उन्हें प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। विश्वावघात करने वाला, चाहे आपके शत्रु का ही विश्वासघाती क्यों न हो, नीति और आवश्यकता के अनुसार आप उसे अपना मित्र बना सकते हैं परन्तु आप उस पर विश्वास कभी न करें। वह समय आने पर आपको भी निश्चित रूप से धोखा देगा। आपके प्रति विश्वासघात करने वालों से सदा सतर्क रहना चाहिये। व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से उसका बहिष्कार करना चाहिए।''

पूज्य श्री तनसिंह जी ने इन विभीषणों के सम्बन्ध में, इन मौका परस्त आस्तीन के सांपों के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कह डाला कि ये गद्दार कितने ही बड़े क्यों न हों, वो हमारे लिए त्याज्य है, धूल समान है, उन्हें कभी माफ नहीं किया जाना चाहिए, वो दण्ड के भागीदार हैं, उन्हें दण्ड दिया जाना चाहिए, उन्हें कुचलने में लेशमात्र भी देर नहीं की जाए, तभी इस चलती परम्परा का, इस बढती हुई विष बेल का खात्मा होगा। पूज्य श्री आयुवान सिंह जी ने भी इन विश्वासघात करने वालों से सदा सतर्क रहने की चेतावनी दी है। इन महापुरुषों ने समाज के गद्दारों के सम्बन्ध में इन विभीषणों के सम्बन्ध में जो सख्त निर्देश दिया हैं, जो शिक्षा दी है, क्या इन महापुरुषों की शिक्षा का हमारे जीवन में असर है या नहीं, है तो कितना? समय ही बताएगा।

पूज्य श्री तनसिंह जी, पूज्य श्री आयुवान सिंह जी हमें चेता गये, सतर्क कर गये, और इनसे पूर्व भी हुए महापुरुष आगाह करते गये, पर यह विभीषण की परम्परा तो आज भी चल रही है, यह विष की बेल तो बढती ही जा रही है, इसका कारण ढूंढें तो पाएँगे कि कुछ लोग अवसरवादी होते हैं जिन्हें हम खुद गरजी व स्वार्थी कह सकते हैं। ये बड़े छुपे रुस्तम होते हैं, अपनी पहचान उजागर नहीं होने देते। ऐसे अवसरवादी लोग समाज में, संघ में, सब जगह हैं। बातें बनाने में ये लोग बड़े माहिर होते हैं। बातों में ये अपने को समाज व संघ के बड़े हितैषी बताते हैं, पर वास्तविकता कुछ ओर ही है। इनको संघ व समाज से कोई लेना-देना नहीं, ये तो अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में लगे रहते हैं।

हम देख रहे हैं, गद्दारों को कौन भाव दे रहा है, गद्दारों को समाज व आदर देकर उनकी आड़ में कौन अपनी रोटियाँ सेक रहा है? ऐसे लोगों की पहचान कर जब तक इन्हें नहीं कुचलेंगे, तब तक इन विभीषणों की परम्परा चलती रहेगी, ये विष की बेल बढती जी रहेगी, समाज इसका दुष्परिणाम भुगतता ही रहेगा, दगा खाता ही रहेगा।

●

पूज्य साहब श्री भगवान सिंह जी

– महेन्द्र सिंह तारातरा

हम सिंधु के छोटे बिंदु, हममें सागर लहराता है अर्थात् बिंदु जब अपना अस्तित्व भुलाकर सिंधु में मिलता है वो सिंधु हो जाता है। साहब का जीवन ठीक ऐसा ही था...

साहब श्री का जाना शब्दों से शून्य कर गया है, फिर भी उमड़ते भावों को शब्द दिए बिना चित्त शात भी नहीं हो रहा है।

हजारों लोगों में सोशल मीडिया पर जपनी संवेदना प्रकट की है, लाखों ऐसे होंगे जो कुछ लिख भी न पाए होंगे। सभी ने कहा कि हमें उनसे पितृवत स्नेह मिला, अब ऐसा लग रहा है जैसे सिर से साया उठ गया हो, एक वरदहस्त था जिसके साए में महफूज थे, अब वो नहीं रहा है। एक ही जीवन में लाखों लोगों को इतना स्नेह किस प्रकार दिया जा सकता है, यह सामान्य मानवी के अधिकार क्षेत्र की बात नहीं है। और यह कोई चमत्कार या कोई जादुई शक्ति भी नहीं है। यह सब संभव हुआ है जीवन भर अपने ध्येय के प्रति निष्ठावान होकर लगातार अपने कर्तव्य पथ पर चलते रहने से।

श्री क्षत्रिय युवक संघ से लाखों लोग जुड़े हैं जिसमें से अधिकांश का यह अनुभव होगा कि जीवन में एक दौर ऐसा आया जब वो संघ से दूर हुए या निष्क्रिय हुए, पर साहब 1963 से ऐसे जुड़े कि कभी बिछुडे नहीं। पूज्य तनसिंह जी का आप पर इतना प्रभाव रहा कि संपूर्ण जीवन का समर्पण कर दिया। कहना बहुत आसान है पर लगातार नियमबद्ध होकर चलना बड़ा दुष्कर कार्य है। मन, वचन और कर्म की एकरूपता देखनी हो तो कोई साहब का जीवन देख सकता है। बाकी आज के युग में जुबानी जमा खर्च और आचरण में दिन रात का अंतर हम देखते ही हैं।

1989 में आप संघ के चौथे संघ प्रमुख बने पर इससे पहले भी कई वर्षो से तृतीय संघ प्रमुख पूज्य श्री नारायण सिंह जी रेड़ा के निर्देशन में सारा काम काज संभाले हुए थे। पूज्य तनसिंह जी ने जो संघ रूपी पौधा रोपा उसे वटवृक्ष बनाने में साहब का बड़ा योगदान रहा। साहब की दूरदृष्टि, योजना, कठोर परिश्रम और सच में अटूट विश्वास ही था जो संघ का इतना विस्तार कर पाया।

बहुत हिम्मत वाले व्यक्ति थे, फैसले लेने और नवाचार करने से घबराते नहीं थे। जब समाज की महिलाओं ने आकर बात रखी कि मात्र युवकों के संस्कारवान और योग्य होने से समाजोत्थान हो जायेगा ? क्या समाज की बालिकाओं के लिए भी संघ को कार्य नहीं करना चाहिए? इसकी परिणिति थी कि संघ में बालिका शिविर शुरू हुए। परम्परागत और रूढिवाद समाज में यह कार्य कितना मुश्किल रहा होगा इसका हम आज अंदाजा भी नहीं लगा सकते हैं। नवविवाहित युगलों को भी उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए इस हेतु दंपती शिविर भी साहब ने ही प्रारंभ करवाए। उम्रदराज लोगों के लिए सपरिवार आध्यात्मिक यात्राओं का आयोजन करवाया। साहब के पास जब भी कोई समाज उपयोगी योजना लेकर गया, उन्होंने खुले मन से उसे सुना और जो व्यावहारिक थी उन पर कार्य प्रारम्भ भी किया। इसी कड़ी में यह जरूरत महसूस हुई कि राजनेताओं और समाज में आपसी समन्वय का अभाव है तो श्री प्रताप फाउण्डेशन बना। युवाओं को जोड़ने हेतु प्रताप युवा शक्ति अस्तित्व में आया। समाज में 25 वर्ष से ऊपर आयु वाले ऐसे लोग जो विद्यार्थी जीवन में संघ से नहीं जुड पाए ऐसे लोगों को संघ से जोड़ने के लिए ''श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन'' बना।

परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानंद जी महाराज जी से आप जुड़े तो जीवन में इतना नियम और संयम लाए कि अच्छे-अच्छे साधु भी उस स्थिति को पाने को लालायित रहते हैं। लाखों की संख्या में देश भर में यथार्थ गीता बंटवाई और हजारों लोगों को आश्रम से जोड़ने के शुभ माध्यम बने।

संघ और आपका साक्षात् विरोधी ही क्यों न रहा हो आपने उससे दूरी नहीं रखी, मन में उनके प्रति कोई दुर्भावना नहीं रखी। हम जैसे सामान्य लोगों को यह अखरता भी होगा, पर महामानव ऐसे ही होते हैं। एक बार रूबरू की घटना है कि आपको बताया गया कि लोग आपको सोशल मीडिया पर भला बुरा कह रहे हैं तो चिरपरिचित मुस्कान के साथ बोले कि गिनायत हैं, म्हारा कोड़ करे है, इणमै नाराज क्यों होवो हो। ऐसे अवसर भी आए जब आपका विरोध हुआ पर आपने मन में कुछ नहीं रखा। समाज के ही लोग आपको या संघ को न जानने की वजह से हमेशा ही खुद की दूषित दृष्टि से आपको भी देखते रहे और आलोचना करते रहे। मुझे ऐसे लोगों के लिए सच में दुःख होता है कि वो अनजाने में ही कितने बड़े पाप के भागी बने हैं। कुछ षडयंत्र पूर्वक यह कार्य करते रहे उनके लिए तो कहें ही क्या।

निजी बात करूँ तो सबकी तरह ही मुझे भी आपका खूब स्नेह मिला, खूब हौसला बढ़ाया। किन्तु मुझे आपके सामने जाने में हमेशा ही एक प्रकार का डर सा लगता था। इसका कारण था मुझसे अपने कर्तव्य के प्रति उदासीनता का भाव, जब आप जानते हैं कि आप में कोई कमी है तो डर लगता ही है, बाकी साहब ने कभी डांटा तक भी नहीं। इसका भी एक कारण था कि मैं उस स्थिति तक पहुँच ही नहीं पाया कि डांटा जा सके, अभी तो लाड करके मार्ग पर बनाए रखने तक का मुद्दा ही था। इतना गैर जिम्मेदार और अनियमित होने के बावजूद मुझ जैसे स्वयंसेवक पर साहब ने इतना प्रेम और स्नेह बरसाया तो विचार करें कि जो कर्तव्य पथ पर ठीक से चल रहे थे उनके लिए आप श्री ने क्या नहीं किया होगा।

जीवन में आपने अपनी कठिन तपस्या से जो कुछ अर्जन किया सब कुछ संघ को समर्पित कर दिया। अपने पास कुछ न रखा। 2021 में संघ प्रमुख का पद भी अपने योग्यतम स्वयंसेवक श्री लक्ष्मण सिंह जी बैण्याकाबास को सौंप दिया। इतनी सहजता से यह नेतृत्व परिवर्तन हो गया जो कि इस पद और सत्ता लोलुप संसार में अचंभा करने जैसी बात है। ऐतिहासिक हीरक जयंती समारोह के बाद मीडिया और नेता बधाई देने पहुंचे कि आपके नेतृत्व में यह ऐतिहासिक कार्यक्रम सम्पन्न हुआ तब बहुल शान्त भाव से मुस्कुराते हुए कहा सब पूज्य श्री की कृपा से हुआ है, मेरा इसमें कुछ नहीं। हम विचार करें कि आज श्रेय लेने की होड़ वाले युग में कोई ऐसा कैसे कर सकता है। बस ऐसे थे हमारे साहब।

पूज्य तनसिंह जी द्वारा रचित एक सहगीत की पंक्ति है कि हम सिंधु के छोटे बिंदु, हममें सागर लहराता है अर्थात् बिंदु जब अपना अस्तित्व भुलाकर सिंधु में मिलता है तो सिंधु हो जाता है। साहब का जीवन ठीक ऐसा ही था, वो मैं से हम हो गए। खुद को भुलाया तो देखो संसार ने कैसे सिर आंखों पर बैठाया।

क्या शानदार जीवन जिया। आपके कोई पुत्र या पुत्री नहीं थे, धर्मपत्नी का भी काफी वर्षों पहले देहांत हो गया था पर कभी ये चिंता शायद ही रही हो कि बुढ़ापे में सहारा कौन होगा? एक इशारे पर हजारों लोग खड़े थे। और प्रस्थान भी हम सबने देखा ही, सैंकड़ों महिलाओं का हृदय विदीर्ण करने वाला रुदन और स्वयंसेवकों का दुनिया से छिपाकर फूट फूट कर रोना, देश और प्रदेश के शीर्ष नेतृत्व का हाजिर होना, सैकड़ों लोगों का सिर मुंडवाना जबकि आज के समय हम देखते ही हैं कि घर के लोग भी बाल कटवाने से बचते हैं। इन उदाहरणों से तात्पर्य यही है कि जब आप व्यष्टि से समष्टि की ओर बढते हैं तो परिवार का दायरा बहत बड़ा हो जाता है। ''पूज्य श्री भगवान सिंह जी रोलसाहबसर'' एक ऐसा आदर्श प्रेरणादायी जीवन जिसका अनुसरण करके कोई भी जीवन के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इस पर चलना खांडे की धार पर चलने सरीखा है, पर जो चलेगा पहुँचेगा जरूर।

''जय संघशक्ति''

श्री भगवान सिंह सा रोलसाहबसर

– शिवराज सिंह चौहान

श्री क्षत्रिय युवक संघ की,
बने अमिट पहचान।
भगवान सिंह सा कर गए,
भगवन घर प्रस्थान।।
फरवरी महीना, तारीख दो,
और चम्मालिस की साल।
'मेघ सिंह जी', 'गोम कंवर' घर,
जन्मे 'भगवन' लाल।।
सीकर में फतेहपुर निकट,
रोलसाहबसर गाम।
सब शिक्षा कर के ग्रहण,
पाया उच्च मुकाम।।
'तन सिंह जी' से जो हुई,
प्रथम शिविर मुलाकात।
तन मन 'तन सा' को सौंप कर,
करी सजग शुरुआत।।
शिविर रतनगढ़ छोड़ गया,
अलग अनूठी छाप।
समर्पित स्वयं सेवक बने,
'भगवान सिंह सा' आप।।
'तन सिंह सा' ने पा लिया,
जब संपूर्ण विश्वास।
'नारायण सा' को साथ ले,
ये हीरा दिया तराश।।
नारायण सिंह सा तर गए,
जब भगवान पार।
'आप श्री' पर आ गया,
संघ प्रमुख का भार।
शाखा, शिविर, संपर्क बढे,
घूमे सारे देश।
संघ स्वर्ण जयंती के दिन,
कि मिसाल इक पेश।।
आशीष अग्रज जो मिला,
चढा केसरिया रंग।
जोड़ी महिला, बालिका,
बढ़ गई और उमंग।।
'आलोक आश्रम' स्थापना,
'श्री दुर्गा महिला विकास'।
'फाउण्डेशन श्री प्रताप',
किए अथक प्रयास।।
'यथार्थ गीता' प्रणेता,
'महाराज अड़गड़ानंद'।
से आध्यात्मिक ज्ञान ले,
पा लिया परमानंद।।
सौंपी 'लक्ष्मण सिंह सा'
कोख संघ प्रमुख की डोर।
स्वयं संरक्षक, मार्गदर्शक बने,
हुई सुनहरी भोर।।
दिन दुगुनी और रात चौगुनी,
मेहनत लाई रंग।
देख के कारज आपके,
हर कोई रह गया दंग।।
आन, बान और शान धणी,
थे 'भगवान' दबंग।
पांच जून पच्चीस को,
हारे जीवन जंग।।
क्षात्र धर्म पथ पर बने,
जो 'श्री चरण' निशान।
उन चरणों में है नमन,
'शिवराज सिंह चौहान'।।

त्रिगुणात्मक सृष्टि

– अजीतसिंह धोलेरा

माननीय भगवान सिंह जी द्वारा रचित यज्ञ-प्रार्थना में गाया है-

रज हमारा तम के संग मिल हमको ही है खा रहा।
सत हमारा देख यह सब अश्रु ही बहा रहा।।

रज अर्थात् रजोगुण हमारा कैसे हुआ? वह रजोगुण तम अर्थात् तमोगुण के संग क्यों मिला? और उससे हम कैसे खाये जा रहे हैं?

फिर दूसरी पंक्ति में लिखा है कि हमारा सत अर्थात् सतोगुण (सत्त्व गुण) यह सब देख कर अश्रु क्यों बहा रहा है? रज यदि तम से मिल गया तो उससे सत को क्या आपत्ति हो सकती है? और रोना क्यों आता है? इन सारे प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए-

प्रणिपातेन पतिप्रश्नेन सेवया...गीता 4/34 – दण्डवत प्रणाम करके पवित्र भाव से सेवा करके प्रश्न पूछने के लिए गीता माता, श्री क्षत्रिय युवक संघ व तत्त्वदर्शी ज्ञानी लोगों की शरण में जाना पड़ेगा। तब ही वे महात्मा लोग एवं गीता माता उन प्रश्नों के उत्तर में तत्त्व ज्ञान का उपदेश देंगे।

यहाँ एक मूल्यवान तत्त्व को समझ लें। गीता ज्ञान योग है तो श्री क्षत्रिय युवक संघ उस ज्ञान के अनुरूप कर्म योग है। जहाँ भी ज्ञान एवं कर्म का योग होगा वहाँ भक्ति अपने आप जुड़ जाएगी। इसीलिए पूज्य तनसिंह जी ने प्रार्थना में गाया है-

विचारानुकूल आचार बनाकर वास्तविक भक्ति से तुम्हें रिझाऊँ।

ज्ञान गंगा है, कर्म यमुना है और उन दोनों नदियों का जब संगम होता है, वहाँ भक्ति स्वरूपा सरस्वती अदृश्य रूप से आ मिलती है और त्रिवेणी संगम बन जाता है।

ईश्वर सृजित यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है अर्थात् सृष्टि में तीन गुण-सत्त्वगुण, रजोगुण व तमोगुण निरन्तर रूप से सदा विद्यमान रहते हैं। श्री कृष्ण कहते हैं-

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। गीता 17/13

यह जगत तीन गुणों के भाव से व्याप्त है। कौन है इस तीन गुणों के सृजक? श्री कृष्ण ने इसका जवाब देते हुए कहा है-

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तमसाः।
च ये मत्त एव रतितान्विद्धि।। गीता 7/12

सत्त्व गुण, रजोगुण एवं तमोगुण से उत्पन्न जो भाव हैं उन सबको (हे अर्जुन) तुम मुझसे सृजित हुए जान।

ये गुण विश्व में क्या करते हैं? गीता में कहा है-

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
गीता 3/27

सभी कर्म सभी प्रकार से प्रकृति के (तीनों) गुणों से किये जाते हैं। अर्जुन का प्रश्न-तो क्या मैं कुछ नहीं करता? हम वैसे तो बहुत कर्म करते हैं।

उत्तर- अपने को कर्ता मानने वाले लोगों के लिए श्री कृष्ण कहते हैं-

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। 3/27

अहंकार द्वारा मोहित हुआ अज्ञानी ''मैं कर्ता हूँ''। ऐसा मानता है। तो फिर जो मूढ नहीं है, ज्ञानी है वे भी कर्म तो करते ही हैं। उनके बारे में श्री कृष्ण कहते हैं-

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्म विभागयोः।
गुणा-गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।। 3/28

किन्तु हे महाबाहो! गुण विभाग और कर्म विभाग के तत्त्वों को जानने वाले ज्ञान योगी तो सभी गुण गुणों में काम कर रहे हैं ऐसा समझ कर उनमें आसक्त नहीं होते।

यहाँ दो शब्द गुण विभाग और कर्म विभाग को समझ लें। ज्ञान योगी अर्थात् जो आत्मज्ञान से निरन्तर जुड़ा रहता है वे गुण विभाग व कर्म विभाग को जानते हैं।

गुण विभाग अर्थात् त्रिगुणात्मक माया (सृष्टि) के कार्य पाँच महाभूत-आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी एवं मन बुद्धि और अहंकार तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ- आँख, कान, नाक, जीभी व त्वचा। पांच विषय-रूप (आँख से) श्रवण (कान से) गंध (नाक से) स्वाद (जीभी से) स्पर्श (त्वचा से)। पाँच कर्मेन्द्रियाँ हाथ, पाँव, वाणी, उपस्थ (जननेन्द्रिय)

व गुदा (मलेन्द्रिय) इन सब के समूह का नाम गुण विभाग है और उनकी परस्पर की चेष्टा कर्म विभाग है।

इन गुण विभाग व कर्म विभाग का भली प्रकार से ज्ञाता, ज्ञान योगी अलिप्त रहता है और उनमें आसक्त नहीं होता। फलत: वह कर्म के फल से बंधता नहीं। उसको कर्म फल भुगतना नहीं पड़ता। ऐसे ज्ञानी भी कर्म तो करते ही हैं। श्री कृष्ण कहते हैं–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु विष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै:।। 3/5

सच में कोई भी मनुष्य कभी भी एक क्षण के लिए भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता, क्योंकि सारे मनुष्यों को प्रकृतिजन्य गुणों से विवश होकर कर्म तो करना ही पड़ता है। परन्तु–

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रह:।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।। 4/21

जिसको कोई आशा–अपेक्षा नहीं है अंतकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) और इन्द्रियों को व पूरे शरीर को जीत लिया है, और भोगों के सभी साधनों का जिसने परित्याग कर दिया है, ऐसा महात्मा शरीर से कर्म करते हुए भी पाप को नहीं प्राप्त होता।

यह कैसे होता है? होता भी है या नहीं। एक उदाहरण से समझें–

एक बार श्री कृष्ण अपनी पत्नियों के साथ नदी किनारे विहार कर रहे थे। भोजन का समय हुआ। भोजन प्रारम्भ करने से पहले श्री कृष्ण ने रानियों से कहा, ''इस नदी के दूसरे किनारे महर्षि दुर्वासा तप कर रहे हैं। पहले उनको भोजन करवा के आओ, फिर हम भोजन करेंगे।'' भोजन सामग्री से एक बड़ा थाल सजा कर रानियाँ महर्षि दुर्वासा को भोजन खिलाने के लिए चली तो देखा कि नदी गहरी है उसे पार करना सम्भव नहीं है अत: वापिस आकर कृष्ण को समस्या बताई तो श्री कृष्ण ने कहा कि– ''जाओ और नदी माता से प्रार्थना करो कि यदि श्री कृष्ण बाल ब्रह्मचारी हैं तो मार्ग दे दो।'' रानियाँ परस्पर देखकर मुस्कराई। पर श्री कृष्ण ने कहा था इसलिए वे सशंक गई। नदी से प्रार्थना की और आश्चर्य नदी ने मार्ग दे दिया।

विस्मित रानियाँ चलकर महर्षि के पास गई तथा भोजन परोसा। महर्षि दुर्वासा ने पूरा थाल साफ कर दिया। खाली थाल लेकर लौटी तो देखा नदी पूर्ववत बह रही है। अब श्री कृष्ण के पास कैसे जाया जाये। वापिस आकर उन्होंने अपनी समस्या महर्षि जी को बताई। महर्षि जी ने पूछा आप आई कैसे थी? रानियों ने सारी बात बताई तो महर्षि दुर्वासा बोले, ''जाओ और नदी माता से प्रार्थना करो कि दुर्वासा मुनि आजीवन उपवासी हो तो हमें मार्ग दे दो।''

दुर्वासा मुनि आजीवन उपवासी! अभी तो हमारे सामने भोजन ग्रहण किया है फिर उपवासी कैसे? वो भी आजीवन उपवासी। पर कोई चारा नहीं था। रानियाँ नदी के किनारे पहुँची और प्रार्थना की, आश्चर्य, नदी ने मार्ग दे दिया।

श्री कृष्ण का आजीवन ब्रह्मचारी होना तथा महर्षि दुर्वासा का सदा उपवासी मानना कैसे सम्भव हुआ? वस्तुत: दोनें पूर्णत्व को प्राप्त थे, अन्तस्थ हुए सिद्ध योगी थे, उनका मन सदा ईश्वर से जुड़ा रहता था। ऐसे महात्माओं का शरीर व इन्द्रियाँ सभी कर्म करते हुए भी वे उस कर्म से आसक्ति नहीं रखते थे।

ऐसे लोगों के लिए ही श्री कृष्ण ने गीता में कहा है–

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वश:।
य: पश्यनि तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति।।

अर्थात् और जो व्यक्ति सभी कर्मों को सभी प्रकार से प्रकृति द्वारा ही होते हुए देखता है, खुद को अकर्त्ता मानता है वो ही सही अर्थ में देखता है अर्थात् उस भाव को वह तत्व से समझ लेता है कि प्रकृति से उत्पन्न सभी गुण गुणों में ही बर्तते हैं। किन्तु–

प्रकृतेर्गुणसम्मूढ़ा: सज्जन्ने गुणकर्मसु। 3/29

प्रकृति के (तीनों) गुणों से अत्यन्त मोहित हुए लोग गुणों में और कर्मों में आसक्त रहते हैं तथा अपने को कर्त्ता मानते हैं। प्रकृति में रहकर ही मनुष्य प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थों में रत रहता है और इसी कारण जीवात्मा का अच्छी–बुरी योनि में जन्म होता है।

मतलब यह है कि सत्त्व गुण से देव योनि में (ज्ञान युक्त सत्कर्म करने वाला), रजोगुणी मनुष्य (अच्छे–बुरे दोनों प्रकार के कर्म करने वाला) तथा तमोगुणी मनुष्य नीच योनि में (जहाँ केवल नीच कर्म ही किये जाते हैं) जन्म पाता है यही इस त्रिगुणात्मक सृष्टि का विधान है। ●

इतिहास के झरोखे से–

भक्ति, ज्ञान एवं शौर्य की त्रिवेणी–मीराँ बाई मेड़तणी जी

– राजेन्द्र सिंह राणीगाँव

भक्त शिरोमणी मीराँ बाई की भक्ति के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान होने के कारण उनके ज्ञान एवं शौर्य की चर्चा अत्यन्त मात्रा में पढ़ने/सुनने को मिलती है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य उनके शौर्य एवं ज्ञान के बाबत पाठकों को अवगत कराना है।

पारिवारिक पृष्ठभूमि :

जोधपुर के संस्थापक राव जोधा जी के पुत्र एवं राठौड़ कुल की मेड़तिया शाखा के प्रवर्तक राव दूदाजी थे। दूदाजी के 5 पुत्र क्रमश: वीरमदेव जी, रायमल जी, रायसल जी, रतनसिंह जी एवं पंचायण जी थे। मीरां बाई का जन्म कुँवर रतन सिंह जी की धर्मपत्नी श्रीमति वीर कुँवरी झाली जी की कोख से हुआ था। उनके जन्म स्थान एवं तिथि के बाबत इतिहासकारों में मतभिन्नता है। एक मतानुसार उनका जन्म विक्रम संवत् 1555 में मेड़ता के कुड़की नामक ग्राम में हुआ था। अन्य इतिहासकार जन्म स्थान ''बाजोली'' नामक ग्राम को मानते हैं।

''मीरां चरित' नामक पुस्तक की लेखिका श्रीमति सौभाग्य कुमारी जी राणावत के अनुसार मीरांबाई का जन्म मेड़ता के गढ़ में वि.सं. 1561 के अश्विनी मास की पूर्णिमा को मध्याह्न में हुआ था।

उनका बाल्यकाल राव दूदाजी की छत्र–छाया में व्यतीत हुआ था। उनकी संपूर्ण शिक्षा–दीक्षा का प्रबन्ध राव दूदाजी द्वारा सर्वश्रेष्ठ गुरुओं के माध्यम से कराया गया था। मीरांबाई का बचपन से ही आध्यात्म के प्रति झुकाव था। अत: राव दूदाजी ने उनको आध्यात्म की शिक्षा संत बिहारीदास जी, भक्त रैदास जी से दिलवाई। मीरांबाई के योग गुरु प्रसिद्ध योगी निवृतिनाथ जी थे उन्होंने संगीत भी सिखाया। शस्त्र संचालन में भी मीरांबाई को तत्कालीन समय के सर्वश्रेष्ठ तलवार के धनी रायसल जी (जो वीरमदेव जी से छोटे एवं रतनसिंह जी से बड़े थे) का मार्गदर्शन मिला। ऐसा माना जाता है कि रायसल जी तलवार युद्ध में वीरमदेवजी से भी अधिक निपुण थे। ऐसे समर्थ गुरु से शिक्षा के साथ जयमल जी (वीरमदेव जी के सुपुत्र) जैसे छोटे भाई के संग तलवारबाजी एवं अश्वारोहण आदि का पर्याप्त अभ्यास हुआ।

मीरांबाई का विवाह मेवाड़ के महाराजा संग्रामसिंह जी (राणा सांगा) के जेष्ठ पुत्र एवं युवराज भोजराज के साथ वि.सं. 1573 की अक्षय तृतीया को सम्पन्न हुआ था। यह एक लौकिक कृत्य था वास्तव में मीरांबाई ने भगवान श्री कृष्ण के गिरधर गोपाल स्वरूप को आध्यात्मिक रूप से पति मानकर जीवन निर्वाह किया था। युवराज भोजराज जी ने इसी रूप से इस रिश्ते को स्वीकार किया एवं मीरांबाई की आध्यात्मिक उन्नति के सहचर बने। दैवयोग से भोजराज जी का स्वर्गवास वि.सं. 1578 (कुछ इतिहासकार 1583 मानते हैं) में हो गया था। उसके पश्चात् भी महाराणा सांगा ने ''खानवा'' के युद्ध में विश्वासघाती द्वारा ''जहर'' पान से मृत्यु (वि.सं. 1584) तक मीरांबाई की आध्यात्मिक यात्रा में पूर्ण सहयोग दिया। उनके पश्चात् महाराणा रतनसिंह (द्वितीय) 1584–1588 तक मेवाड़ के अधिपति रहे वे भी अपनी भाभी मीरांबाई के साथ अत्यन्त सम्मान एवं श्रद्धपूर्वक व्यवहार करते थे। दुर्भाग्यवश उनकी मृत्यु 1588 में हो गई उसके पश्चात् मेवाड़ की गद्दी पर हाड़ी राणी कर्मावति एवं राणा सांगा जी के पुत्र विक्रमादित्य को विराजमान किया गया। महाराणा विक्रमादित्य कुश्ती के शौकीन थे एवं राजकार्य से अनभिज्ञ, अल्पज्ञानी, क्रोधी, दम्भी एवं निष्ठुर स्वभाव के व्यक्ति थे। वे अपने सामन्तों का

सार्वजनिक अपमान कर देते थे अत: सामन्तगण अधिकांशतया उनसे रूठे रहते थे। राणा सदैव पहलवानों से घिरे रहते थे, कुल मिलाकर राज्य में अराजकता का वातावरण बन गया था। गुजरात एवं मालवा की सेनाएँ एवं डाकूगण मेवाड़ में घुसपैठ कर प्रजाजनों के साथ लूट-खसोट करते रहते थे। राणा जी के सेनानायकों में निचले स्तर पर कोई नियंत्रण नहीं था अत: सैनिक भी प्रजा के साथ अभद्रता कर देते थे। राणा जी का व्यवहार अपनी बड़ी भाभी मीरांबाई के प्रति असहिष्णु था। ऐसे वातावरण में मीरांबाई अपने पीहर मेड़ता में कुछ समय व्यतीत कर जब पुन: चित्तौड़ जा रही थी उस दौरान के एक प्रसंग से उनके शौर्य की झलक हमें मिलती है।

शौर्यपुंज मीरांबाई :

मेड़ता से चित्तौड़ की सीमा में प्रवेश के कुछ दूरी पर मीरांबाई ने रास्ते के पास महिलाओं एवं बच्चों के क्रन्दन की आवाज सुनी। उन्होंने रथ को रोककर साथ में चल रहे अंग रक्षकों से कहा कि यह कैसा शोर है पता लगाओ। अंग रक्षकों को अंदेशा था कि सम्भवतया गुजरात/मालवा के डाकू होंगे। ऐसे में यदि उन्होंने मीरांबाई के सैनिकों द्वारा रोके जाने पर उनके ही शिविर पर आक्रमण कर दिया तो मीरांबाई की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती थी। अत: सैनिकों ने कहा कि वे पहले उनको (मीरांबाई) चित्तौड़ पहुँचा दें तत्पश्चात तत्काल इस बाबत आकर आवश्यक कार्यवाही करेंगे। मीरांबाई ने गम्भीर एवं कठोर शब्दों में आदेश दिया कि तत्काल इस ''कोलाहल'' के कारणों का पता लगाने हेतु सैनिक तुरन्त जावे। आज्ञा का पालन हुआ कुछ समय पश्चात् सैनिक एक ग्रामीण के साथ लौटे। ग्रामीण ने बताया कि उनके ग्राम में राणा जी के सैनिकों की टुकड़ी ''कर'' (Tax) संग्रहण हेतु आई है। घरों में अनाज आदि पेट पालन के लिए भी कम है परन्तु वे घरों से महिलाओं एवं बच्चों को प्रताड़ित कर रहे हैं। पुरुषों को हाथ पैर बांधकर डाल रहे हैं एवं मवेशी अनाज, बर्तन आदि लेकर जाने का कह रहे हैं। ग्रामीण ने कहा अपने राज्य में कुछ समय पूर्व मालवा के डाकू लूट खसोट कर गये, बच्चों की हत्याएँ की, स्त्रियों का शील भंग किया तथा पुरुषों को भी मारा गया। राज्य की इस अराजक स्थिति को सुनकर मीरांबाई ने पुन: आदेश दिया कि राणा जी की सेना के नायक को तत्काल उपस्थित होने का कहा जावे। उनके आदेश की अनुपालना हेतु गये अंग रक्षक ने वापस आकर कहा कि सेनानायक ने मीरांबाई के आदेश को अनसुना करते हुए कहा कि वे अपना आदेश जो कि राणा जी की तरफ से ''कर'' (Tax) संग्रहण का है उसकी अनुपालना कर रहे हैं अत: अन्य किसी के आदेश को वे नहीं मानते। ''राजसेवकों'' के इस दुस्साहस को सुनकर मीरांबाई तत्काल रथ से नीचे उतर गई एवं ''रथ'' में से एक ''तलवार'' म्यान से बाहर निकालकर हाथ में ले ली। उस समय उनके मुख पर तीव्र तेज, आँखों में क्रोधाग्नि, होठों पर कम्पन्न एवं रोमावली खड़ी हो गई थी। वे गम्भीर वाणी में बोले कहाँ है वे दुर्जन मैं स्वयं ही चलती हूँ।

उस समय वे साक्षात् भगवती दुर्गा के रूप में शोभायमान हो रही थी। उन्हें रोकने का साहस किसी में नहीं हुआ, अंगरक्षक उनके साथ हो गये। गाँव में जाकर मीरांबाई ने जो दृश्य देखा कि राज सेवकों ने पुरुषों को हाथ पैर बांधकर पटक रखा था। बच्चे रो रहे थे तथा सेवकगण घरों से सारा सामान, मवेशी आदि खेंचकर बाहर लाकर एकत्रित कर रहे थे। महिलाओं के साथ अत्यन्त अभद्र व्यवहार कर रहे थे। ऐसे अवसर पर उनके चेहरे पर अत्यन्त कठोर भाव आ गये उन्होंने अत्यन्त कठोर एवं गम्भीर वाणी में कहा कौन है तुम्हारा दल नायक? साक्षात् ''रणचण्डी'' के रूप में तलवार हाथ में लिये मीरांबाई को दल नायक देखकर सूखे पत्ते के समान काँपता हुआ दोनों हाथ जोड़कर उपस्थित हुआ। उसे लगा उसके पाप कर्मों का दण्ड देने हेतु साक्षात् ''समर भवानी'' उपस्थित हो गई थी। मीरांबाई ने उसके एवं दल के द्वारा किये जा रहे दुर्व्यवहार पर कठोर फटकार लगाई एवं डाकुओं से रक्षा करने के स्थान पर स्वयं डाकुओं जैसा व्यवहार करने के कृत्य की भ्रर्त्सना की। दल

नायक ने काँपते हाथों से अभिवादन करते हुए कहा कि वे तो मात्र ''राजाज्ञा'' का पालन कर रहे थे। कर वसूली न होने की दशा में उनके दल को कठोर दण्ड का भागी बनन पड़ता। मीरांबाई ने ग्रामीणों की तरफ देखा जो उनके साक्षात् ''भवतारिणी जगदम्बा'' मानकर दण्डवत हो रहे थे। उन्होंने ग्रामीणों से अन्याय का प्रतिकार करने हेतु आह्वान किया। डाकुओं से मुकाबला करने के लिए प्रोत्साहित किया, महिलाओं को शील रक्षा हेतु सशक्त होने की बात कही। राणा जी के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अनुमान लगाया कि कर की उगाही न होने की दशा में राजसेवकों को दण्ड मिल सकता था। अत: तत्काल उन्होंने गाँव पर बकाया कर की राशि पूछकर अपने एवं अपनी सेविकाओं के ''आभूषण'' राजकोष में जमा कर ग्रामीणों को ''कर मुक्त' बनाया एवं राजसेवकों को सम्भावित दण्ड से बचाते हुए कर्तव्यपालन में सावधानी, डाकुओं से ग्रामीणों की रक्षा करने तथा ग्रामीणों की खराब आर्थिक स्थिति की वास्तविकता से समय-समय पर राणा जी को अवगत करवाने की सलाह दल नायक को दी। मीरांबाई के इस कृत्य से समस्त ग्रामीण प्रजाजन, राजसेवक एवं उनके अपने सहयोगी अत्यन्त प्रभावित हुए। वहाँ से वापस चित्तौड़ आने पर मीरांबाई ने राणाजी को भी सलाह दी कि राज्य में डाकुओं के आतंक पर प्रभावी रोक लगावें एवं प्रजाजनों की वास्तविक कठिनाइयों को समझकर भली प्रकार राज कार्य करें। इस प्रकार मीरांबाई के इस शौर्यपूर्ण कृत्य से जहाँ जनमानस पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। महाराणा विक्रमादित्य जी को व्यक्तिगत रूप से तो यह कार्य राज कार्य में हस्तक्षेप लगा परन्तु मीरांबाई की स्पष्ट एवं हितकारी सलाह को उन्हें शिरोधार्य करना पड़ा।

ज्ञानवती मीराँ :

अपनी विभिन्न धार्मिक यात्राओं के दौरान एक बार मीरांबाई वृंदावन धाम पधारी थी। उन्होंने वहाँ सुना कि उस समय वृन्दावन में चैतन्य महाप्रभु की शिष्य परम्परा के ''संत जीव गोस्वामी'' का प्रवास है। वे गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रमुख सन्त थे। मीरांबाई उनके दर्शनार्थ उनकी आश्रम कुटी पधारी। आश्रम में गोस्वामी जी अपने भजन आदि में लीन थे। द्वार पर उपस्थित उनके शिष्य को जाकर मीरांबाई ने अपने आगमन के प्रयोजन को गोस्वामी जी तक पहुँचाने का आग्रह किया। उस शिष्य ने कहा कि ''गोस्वामी जी किसी ''स्त्री'' से भेंट नहीं करते हैं (तब तक जीव गोस्वामी जी महिलाओं से भेंट नहीं करते थे) अत: आग्रह अस्वीकार है।''

इतना सुनते ही मीरांबाई ने धीर गम्भीर वाणी में स्वामी जी के शिष्य से कहा कि-''मेरा गोस्वामी जी के चरणों में प्रणाम निवेदन करना तथा कहना कि इस अज्ञ दासी मीरां को क्षमा करें क्योंकि वे तो अब तक यह मानती आई थी कि वृन्दावन में एकमात्र पुरुष रासबिहारी ब्रजनन्दन भगवान लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण ही हैं शेष समस्त तो 'स्त्रियाँ' ही हैं'' अब पता चला कि गोस्वामी जी दूसरे पुरुष हैं। अपनी कुटिया में बैठे ''जीव गोस्वामी जी'' के कानों में जैसे ही ये शब्द पड़े वे तत्काल दौड़कर बाहर आये एवं सीधे मीरांबाई के चरणों में लौट कर बोले क्षमा माता इस अविनय के लिए। मीरांबाई ने तत्काल उन्हें उठाया और बोली महात्मन मैंने तो मात्र सर्वविदित तथ्य ही कहा था। गोस्वामी जी पुन: बोले माता सर्वविदित सत्य को अब तक व्यवहार में नहीं लाना उनकी भूल थी वास्तव में वृन्दावन में भगवान श्री कृष्ण ही एकमात्र पुरुष माने जाते हैं। तत्पश्चात् गोस्वामी जी मीरांबाई को अत्यन्त श्रद्धा एवं सम्मान के साथ आश्रम में ले गये एवं अन्य साधुओं के साथ हरिचर्चा सम्पन्न हुई।

उपरोक्त प्रसंग से हमें ज्ञात होता है कि मीरांबाई को गहन आध्यात्मिक ज्ञान प्रचुर मात्रा में था।

चूंकि वे भक्ति के मार्ग पर चलकर उसके सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हो गई अत: उनके इस ज्ञानी स्वरूप की झलक आमजन को कम प्राप्त हुई।

●

आत्म संयम

– रश्मि रामदेरिया

''अनुशासन का पालन करना कड़वा व बहुत मुश्किल होता है; लेकिन अनुशासन का पालन करने के बाद मिलने वाला फल बहुत ही मीठा होता है। जो लोग मन को नियंत्रित नहीं करते। उनके लिए मन शत्रु के समान कार्य करता है।''

आत्म संयम का प्रतिदिन अभ्यास करें। आत्मा की अशान्ति से मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् शान्ति को खो देता है। जब हमारे पास कोई उपाय ना हो तो हमें बस अपने मन को इससे अलग कर लेना चाहिये। मन मुक्त हो जाएगा और कोई भी अवांछनीय संवेदन हमारी चेतना को छू नहीं सकेंगे। पीड़ा की अनुभूति केवल मन में होती है।

शरीर केवल माँस से ढँका अस्थियों का एक पिंजड़ा मात्र है जिसमें जीवन रूपी पक्षी कुछ समय के लिए वास करता है। स्वयं जीवन शरीर से पूर्णत: स्वतंत्र है। परन्तु जीवन शरीर की सीमितताओं के साथ एक हो जाता है और इसलिए दु:ख भोगता है। यदि हम अपने मन और शरीर का विश्लेषण करें तो हम पाएँगे कि उनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। सिवाय उसके जो हम बना लेते हैं। इससे समझने के लिए अभ्यास करते रहना चाहिये। विद्यार्थियों को अपने जीवन पर्यन्त निरन्तर आत्मविश्लेषण करते रहना चाहिये तब वे स्वास्थ्य, यश, क्षमता, सम्पत्ति और प्रसन्नता जैसी अनेकों उपाधियों से विभूषित होंगे।

''प्रेम की सरिता नीचे, तपस्या की धूप ऊपर,
भावना के झंकोरों में रहती है सदा हरी।
जीवन के अन्तस्थल में खिली है फुलवारी
जागी भंवरों की वाणी कल्याणी हितकारी।।''

जब तक हम स्वयं पर विश्वास नहीं करते तब तक हम प्रभु पर भी विश्वास नहीं कर सकते हैं। हर व्यक्ति की आत्मा अमर होती है लेकिन जो व्यक्ति नेक होते हैं उनकी आत्मा अमर और दिव्य होती है। आत्मा पर मन लगाना ही जीवन है। आध्यात्मिक दृष्टि से संयम आत्मा का गुण है। इसे आत्मा का सहज स्वभाव माना गया है। योगानुसार जिस व्यक्ति में संकल्प और संयम नहीं वह मृत व्यक्ति के समान है। संयम और संकल्प के अभाव में व्यक्ति के भीतर क्रोध, भय, हिंसा और व्याकुलता बनी रहती है जिसके कारण उसकी जीवनशैली अनियमित और अवैचारिक हो जाती है। संयम का योग में बहुत ही महत्त्व है।

''खुद पर काबू पा लेना ही मनुष्य की सबसे महत्त्वपूर्ण जीत होती है।''

संकल्प है तो संयम अर्थात् धैर्य भी रखना जरूरी है। योग, आसन या प्राणायाम न भी करें तो चलेगा, लेकिन संयमित जीवनशैली है तो व्यक्ति सदा निरोगी और प्रसन्न चित्त बना रहता है। भोजन कम और हल्का करें। कम बोलें, विवाद तो कभी भी नहीं करें। काम, क्रोध, लोभ, मद, अहंकार आदि से दूर रहकर सतत विनम्र बने रहना जरूरी है। इससे सांसारिक वातावरण का प्रभाव छू भी नहीं पाता। कभी किसी से छल नहीं करें और न स्वयं ही छले जावें। अहंकार और झूठ से सदा दूर रहें। मान-सम्मान, बड़ाई या चंचलता से दूर रहें। संतोष धारण करें व क्षमा को अपनाएँ। टोना, ज्योतिष, भूत, बाबा आदि सभी झूठ हैं, इनसे दूर रहने से मानसिक द्वन्द्व और विरोधाभाषा नहीं रहता। सांसारिक बातों की अधिक चिंता नहीं करें, निश्चय-पूर्वक मन को स्थिर रखने का अभ्यास हमें करते रहना चाहिये। संसार आपको बदले इससे पहले आप स्वयं बदल जाएँ। सांसारिक घटनाक्रम मन को व्यग्र करते हैं जिससे शरीर पर नकारात्मक असर पड़ता है। अत: सर्वप्रथम संयम को अपनाकर तब योग का अभ्यास करना

(शेष पृष्ठ 33 पर)

वीरमदेव सोनगरा

– डॉ. कमल सिंह बेमला

भारत पराक्रमी, शौर्य तथा मातृभूमि के प्रति अपना जीवन न्यौछावर करने वाले सपूतों, जान हथेली पर रखकर मातृभूमि की रक्षा करने वाले योद्धाओं तथा मातृभूमि के अस्मिता रक्षण करने हेतु हँसते-हँसते बलिदान की वेदी पर चढ़ने वाले क्षत्रिय वीरों की भूमि रही है। राष्ट्राभिमान, मातृभूमि के प्रति प्रेम और विदेशी आक्रमणों से देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले राजपूत राजाओं का अग्रक्रम रहा है। तत्कालीन परकिय आक्रामक लुटेरे तुर्कियों को खदेड़कर देश की स्वतंत्रता अक्षुण्य रखी है। बप्पा रावल, हमीर, कुंभा, राणा सांगा से लेकर महाराणा प्रताप, अमरसिंह, राजसिंह तक यह परम्परा कायम रही है।

राजपूतों के कुलों में चौहान कुल के राजाओं का इतिहास बहुत ही गौरवशाली रहा है। भारत के सुदृढ़ किले जालोर में चौहानों का मुख्य राज्य रहा था।

आभ फटे धर उलटे कटे बखतरां कोर।
सिर कटे धर तड़पड़े जद छूटे जालोर।।

विक्रम संवत् 1238 और ईस्वी संवत् 1281 नाडोल के अश्वराज के पोत्र आल्हण के पुत्र कीर्तिपाल परमारों से जालोर छीनकर स्वयं राजा बन बैठे। इतिहास में जालोर का प्राचीन नाम जाबालीपुर और किले का नाम स्वर्णगिरी मिलता है। जाबाली नामक एक ऋषि का उल्लेख उपनिषदों में मिलता है जो जाबाला का पुत्र होने के कारण जाबाली था।

हम यहाँ चर्चा करेंगे जालोर के सोनगरा चौहान राजा वीरमदेव की जिन्होंने वीरता, मातृभूमि के प्रेम, श्रद्धा तथा स्वतंत्रता और मातृभूमि की रक्षा हेतु प्राणोत्सर्ग करके गौरवशाली इतिहास का सुवर्णक्षरों का पन्ना निर्मित किया है। कवि हनुवन्तसिंह देवड़ा लिखते हैं-

कानडदे पावन करम, वीर्य अमर बखांण।
थिर अलसाल इतिहास में, सोनगरा चहूआण।।
मठ नह छावै मिनख नै, आप भुजाएं आपांण।
राखी रिजवट जीवंती, सोनगरा चहूआण।।

तत्कालीन हिन्दू राजाओं को विधर्मी तुर्क मुगलों से अपने हिन्दू धर्म के प्रति अटूट निष्ठा और संरक्षण हेतु भीषण संघर्ष करना पड़ा। सभी राजाओं ने विश्व को अपना पराक्रम, शौर्य का परिचय दिया है। शत्रु चाहे कितना भी बलशाली हो, स्वतंत्रता के पुजारियों, धर्मध्वज लहराने वालों ने कभी हार नहीं मानी बल्कि अपने प्राणोत्सर्ग करते हुए मातृभूमि के लिये बलिदान देते हैं।

भारत के राष्ट्रनायक पृथ्वीराज चौहान, महाराणा सांगा, हम्मीरदेव, कीर्तिपाल, कान्हड देव, सातल देव, वीरम देव, राणा प्रताप, छत्रपती शिवाजी, वीर दुर्गादास राठौड़, छत्रपती संभाजी आदि का जीवन चरित्र प्रेरणादायी रहा है। ऐसे ही प्रेरणादायी वीर पुरुष वीरम देव तथा वीर सिंह चौहान जैसे वीर पुरुषों के बलिदान को वंदन करते हुए लिखते हैं।

मरवां नू कतरा मरै, जीवैं आप जतन।
जे मर रहवै जीवंतता पुजे पांव वतन।।

ऐतिहासिक पार्श्वभूमि :

जालोर का इतिहास सोनगरा चौहान के पराक्रम और शौर्य से गौरवान्वित हुआ है। चौहान वीर सपूत स्वर्णगिरी से अपना नाम सोनगरा के नाम से जाने जाते हैं। कीर्तिपाल से कान्हड़ देव तक के सभी सोनगरा चौहान शासकों ने अपने कार्यकाल को बाहूबल से गौरवान्वित किया है। सर्वाधिक लोकप्रिय होने का गौरव मिला है वीरमदेव सोनगरा को जिन्होंने अपने शौर्य और राष्ट्रभक्ति से अपनी कीर्ति चारों ओर फैलाई और अन्त में धर्म रक्षा हितार्थ अपने प्राण न्यौछावर कर दिये।

नाडोल के अधिपति आलन के पुत्र कीर्तिपाल चौहानों में शौर्यवान महापुरुष हुए उन्होंने अपने बाहुबल से परमारों को

परास्त कर जालोर एवं सिवाना पर विजय प्राप्त कर अपना राज्य स्थापित किया। सोनगरा चौहानों ने इस स्वर्णगिरी पहाड़ पर स्थापित दुर्ग पर एक शतक से भी ज्यादा समय तक राज्य किया, इन चौहानों की शाखा सोनगरा कहलाती है और इस शाखा का मूल पुरुष कीर्तिपाल रहे हैं। कीर्तिपाल के बाद उसका पुत्र सामंत सिंह जालोर के राज सिंहासन पर बैठा, उसके बाद उदयसिंह ने जालोर का राज्य संभाला, उसके पश्चात उनका पुत्र चाचीग देव गद्दी पर विराजमान हुआ, उसके बाद उसके पुत्र सामंत सिंह ने जालोर का राज्यपाट संभाला, उसके बाद कान्हड़ देव ने अलाउद्दीन खिलजी के विरुद्ध बहुत बड़ा संघर्ष किया।

कान्हड देव का शौर्य :

कान्हड देव ने अपने पिता सामंत सिंह के कार्यकाल में बहुत से सैनिक अभियानों का नेतृत्व किया। कान्हड देव ने अपनी वीरता का परिचय अल्लाउद्दीन की सेना के अलफखान (उलूगखान) के विरुद्ध जालोर के युद्ध में दिया। अल्लाउद्दीन खिलजी ने सेनानायक खान और नुसरत खान के नेतृत्व में गुजरात पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उनकी सेना चित्तौड़गढ़ प्रदेश से होकर चल रही थी उस समय अल्लाउद्दीन ने कान्हड देव से कहा था कि वह उसकी सेना को बिना अवरोध से जालोर की सीमा से गुजरने दे लेकिन वीर कान्हड देव ने इस बात का विरोध करते हुए कहा कि तुम्हारी सेना जब गाँव से गुजरती है तो लूटपाट करती हुई औरतों के सत्व को नष्ट करती है एवं गायों की हत्या करती है। इस तरह कान्हड देव ने खिलजी सेना को अपने राज्य से गुजरने नहीं दिया।

अलफ खान ने गुजरात के करण देव पर आक्रमण किया तो वह देवगिरी की ओर भागा। उसका खजाना और राणी कमलादेवी को कैद किया सोमनाथ मंदिर से मूर्तियाँ तथा बहुत सारे नागरिकों को बंदी बनाकर अपने साथ दिल्ली की ओर बढा। इस मार्ग में अलफ खान ने जालोर के निकट सकराना गाँव के पास सैनिकी डेरा डाल दिया। अलफ खान ने कान्हड देव को संदेशा भेजा कि उसने बादशाह का हुकुम न मानकर चुनौती दी है। जालोर दुर्ग की तलहटी में शिविर डालकर हम तुम्हारे राज्य को नष्ट कर देंगे। इस पर कान्हड देव ने कहा कि 'गरजने वाले बरसते नहीं', मैं युद्ध के लिये तैयार हूँ। कान्हड देव ने जयंत देवड़ा, लूनकरण, साल्हा सोभ्रम, लक्ष्मण आधी को अलफ खान की छावनी में सैनिकी शक्ति का पता लगाने के लिए भेजा। मुसलमानों के अत्याचारों की बात सुनकर कान्हड देव बहुत क्रोधित हुए और प्रतिज्ञा की कि सोमनाथ की मूर्ति और गुजराती नागरिकों को मुक्त करने के बाद ही अन्न ग्रहण करेगा।

अलफ खान के सैनिक अधिकारियों के व्यवहार से खिलजी के सेना के एक बड़े समुदारय ने विद्रोह कर दिया और कान्हड देव की सेना में शामिल हो गये, उनमें ममूशाह और वीर गबरू मुख्य थे। कान्हड देव ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये जयंत देवड़ा के नेतृत्व में अलफ खान की सेना पर आक्रमण किया, छापा मार तकनीक से जयंत देवड़ा ने खिलजी की सेना को परास्त किया, साथी मलिक मारा गया और अलफ खान हाथी पर बैठकर युद्ध क्षेत्र से भाग गया। सभी बंदी बनाये गये नागरिकों को मुक्त किया। सोमनाथ के शिवलिंग को एक सौराष्ट्र में, दूसरा वागड में, तीसरा आबू पहाड़ पर, चौथा सरना जालोर में और पांचवां अपनी बाड़ी में स्थापित करके नित्य पूजा की व्यवस्था करवाई। इस युद्ध के बाद खिलजी की सेना मेवाड़ की सीमा से जाती रही। जालोर के सोनगरा चौहानों से टक्कर लेने का साहस खिलजी ने नहीं किया और अपना ध्यान पूरी तरह रणथम्भोर और चित्तौड़ अभियान में लगा दिया। वीर कान्हड देव ने अनेक युद्ध में अपने शौर्य का परिचय दिया। खिलजी सेना का प्रतिरोध करते हुए वह अन्त में अपनी कुलमर्यादा और धर्म के रक्षणार्थ वीरगति को प्राप्त हुआ।

वीरमदे सोनगरा का बलिदान :

कान्हड देव का एक सेवक पंजू पायक किसी कारण से रूठ कर बादशाह की सेवा में चला गया। बादशाह के

मनोरंजन के लिये कुश्ती का प्रदर्शन हुआ उसमें पंजू पायक श्रेष्ठ रहा। बादशाह ने उसे पूछा कि तेरे बराबर कुश्ती खेलने वाला कोई और वीर है? तो पंजू ने वीरम देव सोनगरा की बात चलाई। बादशाह ने वीरम देव को कुश्ती के लिये न्योता दिया। वीरम देव अपनी वीरता का परिचय देने हेतु चाचा रांणगदेव के साथ अन्य गिने-चुने योद्धाओं को साथ लेकर दिल्ली पहुँचा। वीरम देव ने अपने दाँवपेंच से पंजू को धराशायी कर दिया। वीरम देव की इस वीरता से खिलज़ी की पुत्री सीताई उर्फ फ़िरोज़ा बहुत प्रभावित हुई और एक नवीन समस्या उत्पन्न हो गई। वीरमदेव की शोहरत और व्यक्तित्व के बारे में सुनकर शहजादी फिरोजा का दिल वीरम पर आ गया और शहजादी ने किसी भी कीमत पर उससे शादी करने की जिद पकड़ ली और कहने लगी, 'वर वरूं वीरमदेव ना तो रहूंगी अकन कुंवारी' अर्थात् निकाह करूंगी तो वीरमदेव से नहीं तो अक्षत कुंवारी रहूंगी। बेटी की जिद को देखकर अल्लाउद्दीन खिलजी ने अपनी हार का बदला लेने और राजनैतिक फायदा उठाने की सोचकर अपनी बेटी के लिए जालौर के राजकुमार को प्रणय प्रस्ताव भेजा। बादशाह के बहुत समझाने पर भी फ़िरोज़ा नहीं मानी तो बादशाह ने सिताई से विवाह करने का प्रस्ताव वीरम देव के सामने रखा वीरम देव ने बड़ी चतुराई से उत्तर दिया और टालते हुए शाही परंपरा से बारात लाने की बात कही। बादशाह ने वीरम देव को बहुत सारा धन दिया और तीन वर्ष का समय मांग कर अपने चाचा राणगदेव को बंधक के रूप में वहीं रखकर जालोर चला आया। उस सम्पत्ति से वीर वीरम देव ने गढ़ की प्राचीर को और मजबूत बनाने के साथ-साथ जालोर को भी परकोटे से सुरक्षित किया, इसके साथ युद्ध सामग्री का संचय दुर्ग में किया। खिलजी की सुपुत्री फिरोजा भी जालोर पहुंची उसे वीरम देव की सैनिकी अभियान का जायजा लेना था। कान्हडदे प्रबंध के अनुसार बादशाह ने पहले अपनी पुत्री की इच्छानुसार गोलन भात को वीरम देव सोनगरा के पास भेज कर पूर्व प्रदत वचन के अनुसार उसे फिरोजा से विवाह करने के लिए कहा, लेकिन वीरम देव अपनी आन पर अड़ा रहा और उसने विवाह का प्रस्ताव ठुकरा दिया, यह कहकर कि बादशाह म्लेच्छ है और हिंदूओं की औरतों के सतीत्व को नष्ट करता है, गाय का वध करता है ऐसे व्यक्ति की पुत्री के साथ विवाह नहीं करूंगा। कहते हैं कि वीरमदेव ने यह कहकर प्रस्ताव ठुकरा दिया कि...

मामो लाजे भाटियां, कुल लाजे चौहान,
जे मैं परणु तुरकणी, तो पश्चिम उगे भान...।

अर्थात् : अगर मैं तुरकणी से शादी करूं तो मामा (भाटी) कुल और स्वयं का चौहान कुल लज्जित हो जाएंगे और ऐसा तभी हो सकता है जब सूरज पश्चिम से उगे।

तीन वर्ष के उपरांत वीरमदेव बारात लेकर दिल्ली नहीं पहुँचा तो खिलजी ने राणगदेव को बेडियां पहनवाने का हुक्म दिया। यह खबर जब राणगदेव को मिली तो वह घोड़ा लेकर भाग निकला।

आगबबूला होकर अलाउद्दीन ने युद्ध का ऐलान कर दिया। एक वर्ष तक खिलजी सेना ने जालोर आकर स्वर्णगिरी का घेराव कर लिया। लम्बे समय तक घेराव रहने से गढ़ में जब खाद्य सामग्री का अभाव होने लगा तब जालोर के व्यापारियों ने अनाज आदि खाद्य सामग्री सुलभ करवा के अपनी कर्तव्य परायणता का परिचय दिया। जब गढ़ नहीं टूटा तो बादशाह ने मलिक निजामुद्दीन के नेतृत्व में एक और सशक्त सेना जालोर भेजी इधर कान्हड देव ने उस सेना का रास्ता रोकने के लिए कान्ह, डलेचा सूरा रावळ को बड़ी सेना लेकर भेजा। वे भोलाई की बॉडी की ओर से गढ़ से नीचे उतरे और उदलपुर पोहोचेड में मलिक निजामुद्दीन मारा गया। वि.स. 1368 में कान्हड देव के ज्येष्ठ पुत्र वीरम देव का राजतिलक किया गया फिर बहादुरपुर और आमिर के बीच भी राजपूत मुसलमानों में युद्ध हुआ। खिलजी के सेनानायक ने कपट और फितुरी से किले में प्रवेश किया। आखिर खिलजी ने जालौर जीतने के लिए अपने बेहतरीन

सेनानायक कमालुद्दीन को एक विशाल सेना के साथ जालौर भेजा जिसने जालौर दुर्ग के चारों और सुद्रढ़ घेरा डाल युद्ध किया लेकिन अथक प्रयासों के बाद भी कमालुद्दीन जालौर दुर्ग नहीं जीत सका और अपनी सेना ले वापस लौटने लगा। तभी कान्हड़ देव का अपने एक सरदार बीका दहीया से कुछ मतभेद हो गया और विका ने जालौर से लौटती खिलजी की सेना को जालौर दुर्ग के असुरक्षित और बिना किलेबंदी वाले गोबर की दीवार वाले कच्चे हिस्से का गुप्त भेद दे दिया। विका के इस विश्वासघात का पता जब उसकी पत्नी हीरा दे को लगा तब उसने अपने पति को जहर देकर मार डाला और उसका कटा सिर लेकर कान्हड देव के पास पहुँची और सब बात बताई, कान्हडदेव उस वीरांगना की देशभक्ति और गद्दार पति को मारने की घटना से नतमस्तक हो गये। भारत के इतिहास में इस तरह का उदाहरण प्रस्तुत करके हीरा दे सती होकर अजर-अमर हो गई। बीका की गद्दारी से जो काम खिलजी की सेना कई वर्षों तक नहीं कर सकी वह चुटकियों में ही हो गया और जालौर पर खिलजी की सेना का कब्जा हो गया। कान्हड देव ने शाका कर अन्तिम दम तक युद्ध करते हुए वीर गति प्राप्त की। कान्हड देव की मृत्यु के बाद कान्हड देव की राणीयाँ जयंत दे, उमा दे, भावल दे और कमल दे ने अनेक दासियों और स्त्रियों के साथ 1584 जगहों पर हजारों राजपूतानियों ने जौहर की ज्वालाओं में प्रवेश किया। अपने पिता की मृत्यु के बाद वीरमदेव अपने राजपूत योद्धाओं के साथ मुसलमानों से लड़ने को तत्पर हुआ।

वीरमदेव को सूचना मिली की उसे खिलजी सेना जिंदा पकड़ने आई है और सीताई के साथ उसका विवाह कर देंगे, साढे तीन दिन के इस युवा राजा की राणियों ने इतर स्त्रियों के साथ जौहर किया। वीरमदेव को पता था म्लेच्छों के अत्याचार से बचने के लिए उसने अपने पेट में कटारी मारी और दुपट्टा बांधकर मुसलमानों पर टूट पड़ा। इस प्रकार साढ़े तीन दिन राज्य करके वीरमदेव ने 22 वर्ष की अल्पायु में ही युद्ध में हिंदू धर्म और अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये वैशाख शुक्ल छठ 1368 को बलिदान किया।

वीरमदेव का कटा हुआ मस्तक सुगंधित पदार्थ में रख कर दिल्ली ले जाया गया। सिताई ने उस मस्तक को देखकर शोक प्रकट किया और उसका अग्नि संस्कार किया और स्वयं अपनी माता की आज्ञा प्राप्त कर यमुना नदी के जल में प्रविष्ट हो गई। कानडदे प्रबंध के पृष्ठ 230 में लिखा है की वीरमदेव का मस्तक जब स्वर्ण थाल में रख कर सीताई के सम्मुख लाया गया तो उसका सिर उलटा घूम गया तब सिताई ने पूर्व जन्म की कथा सुनाकर अपना संबंध वीरम देव से बतलाया...

तज तुरकाणी चाल हिंदूआणी हुई हमें।
भो-भो रा भरतार, शीश न धूण सोनीगरा।।
जग जाणी रे शूरमा, मूंछा तणी आवत।
रमणि रमता रम रमी, झुकिया नहीं चौहान।

यह सुनकर मस्तक पुनः घूमकर सीधा हुआ। नैनसी की ख्यात पृष्ठ 224 में उस लड़की के वीरमदेव के मस्तक के साथ फेरे की रस्म अदा करने और फिर उसके साथ सती होने का उल्लेख हुआ है। कुछ भी हो लेकिन वीरमदेव जैसा राजपूत युवा वीर अपने धर्म और मातृभूमि की रक्षा के लिये अपना बलिदान देता है यह हमारे लिए बहुत बड़ी बात है। जालोर के किले में वीरमदेव की चौकी बनी हुई हैं जो इस घटना की साक्षी हैं। वीरमदेव जी लोक देवता हैं, उनकी वीरता और बलिदान के लिए उन्हें सोनगरा मामाजी के रूप में पूजा जाता है।

●

हमारा तो जीवन ही एक महान प्रतिज्ञा है, बिना सिर सतत रूप से जीवन क्षेत्र में लड़ने की एक कहानी है।

- पू. तनसिंह जी

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों का योगदान

– भँवरसिंह मांडासी

भारत के स्वातन्त्र्य आन्दोलन में राजपूतों का अति महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है परन्तु राजपूतों के इस योगदान को इतिहासकारों ने स्वातन्त्र्य आन्दोलन के इतिहास में पूर्ण ईमानदारी व निष्पक्षता से नहीं प्रस्तुत किया है फिर भी वास्तविकता व सच्चाई को अधिक समय तक छुपाया नहीं जा सकता है वह स्वत: उजागर हो जाती है।

राजस्थान के राजाओं ने अंग्रेजों की सहायक संधि स्वीकार कर ली थी पर यहाँ के राजाओं के अधीनस्थ बहुत से जागीरदार अंग्रेजों के विरोधी थे। इससे पूर्व ही बिसाऊ के ठाकुर श्यामसिंह ने वि. 1868 में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले रणजीत सिंह (पंजाब) की सहायतार्थ फ्रेंच सेनापति के नेतृत्व में अपनी सेना भेजी थी। इसी समय ज्ञानसिंह मण्डावा ने भी रणजीतसिंह की सहायतार्थ अपनी सेना भेजी थी। बहल पर इस समय सल्हेदीसिंह (भोजराज जी का शेखावत) के वंशजों का अधिकार था। अमरसिंह की मृत्यु के बाद वहाँ कानसिंह का शासन था। बहल पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिये कानसिंह ने अंग्रेजी सेना से संघर्ष किया। ददरेवा के सूरजमल राठौड़ ने कानसिंह की सहायता की। परन्तु बहल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। श्यामसिंह बिसाऊ ने बहल के पास अंग्रेजी शासन के कई गाँवों पर अधिकार कर लिया था। अंग्रेजों ने जयपुर से श्यामसिंह की शिकायत की। महाराजा जयपुर ने असमर्थता व्यक्त की तब रेजीडेन्ट ने सेना की सहायता से श्यामसिंह को दबाना चाहा। इस पर महाराजा जयपुर के समझाने पर श्यामसिंह शान्त हुए। कानसिंह के बाद उनके भाई सम्पतसिंह ने अपने ठिकाने बहल पर अधिकार करने के लिये अंग्रेजी सेना से युद्ध किया। सुना जाता है कि इस समय तीन हजार भोजराज जी के शेखावत अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने को पहुँच गये थे। बीकानेर के राजा सरदारसिंह ने अंग्रेजों की सहायता की जिसकी शंकरदान सामौर ने कटु आलोचना की है।

''सम्पत लड़ै सीसोद सम, बहल बहुरि चित्तौड़।
बीकाणों लाजा मरै, लाज करो राठौड़।।''

'रणबांकुरा अगस्त 1989' में सवाईसिंह धमोरा का लेख पृ. 22 से मालूम होता है कि राजस्थान के राजाओं की इच्छा अंग्रेजों को देश के बाहर निकालने की थी परन्तु मराठों ने पिण्डारियों से मिलकर राजस्थान में जबरदस्त तबाही मचाई। राजस्थान के राज्यों की प्रजा को लूटा जाता था, गाँव के गाँव जला दिये जाते थे। राजस्थान के राजाओं से बार-बार असहनीय अर्थ वसूल किया जाता था। अर्थ न चुकाने की स्थिति में आगजनी और भयंकर लूटपाट की जाती थी। 18वीं सदी के अन्तिम चरण से 19वीं सदी के प्रथम चरण तक ऐसी ही स्थिति बनी रही। ऐसी स्थिति में राजस्थान की प्रजा तो इन लुटेरों से तंग थी ही, राजा भी चैन की सांस नहीं ले सकते थे। मुगल सल्तनत मराठों और पिण्डारियों के ऐसे कुकृत्यों को रोक नहीं पा रही थी। ऐसी परिस्थितियों में विवश होकर राजस्थान के राजाओं को लार्ड वेलेजली की सहायक संधि को ई. 1818 में स्वीकार करना पड़ा था।

इन अंग्रेज विरोधी घटनाओं के समय ओर 1818 ई. की सन्धियों के बाद अंग्रेज विरोधी वातावरण बनने लगा था। शताब्दियों तक देश, धर्म व संस्कृति की रक्षा करने वाले राजस्थान के वासियों ने और विशेष रूप से राजपूतों ने अंग्रेज विरोधी वातावरण को तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। चारण कवि बांकीदास वेलेजली की सहायक संधि पर प्रहार करने वाले सबसे पहले व्यक्ति थे। उन्होंने राजस्थान वासियों को अंग्रेजों से सचेत रहने को

(शेष पृष्ठ 33 पर)

डूंगरपुर

– खींवसिंह सुल्ताना

(पूज्य श्री तनसिंह जी द्वारा रचित 'बदलते दृश्य' पुस्तक के 'बदलते दृश्य' प्रकरण में डूंगरपुर के महापुरुषों के संदर्भ में।)

महारावल वीरसिंह देव के बाद रावल भूचंड ने राज्य किया। भूचंड के उत्तराधिकारी उसके पुत्र डूंगरसिंह हुए जिनका राज्यकाल ख्यातों के अनुसार (1331-1362ई.) रहा। महारावल डूंगरसिंह द्वारा वर्तमान डूंगरपुर राज्य की नींव डाली गयी। उनके पुत्र कर्मसिंह द्वारा शहर व दुर्ग का कार्य पूण करवाया गया। कर्मसिंह (कान्हडदेव) के बाद प्रतापसिंह शासक बने। उनके बाद उनके पुत्र गोपीनाथ (1426ई.) में शासक बने। उन्हें शिलालेखों में राजपाल, गोय, गोपाल तथा ख्यातों में मेवा लिखा है। गुजरात के सुल्तान अहमदशाह ने जब राजस्थान में सैन्य अभियान किया तब मंदिरों की रक्षा व प्रजा रक्षण के लिए महारावल गोपीनाथ ने रणक्षेत्र में आगे बढ़कर उसका सामना किया और उसे परास्त किया जिसका वर्णन आंतरी के शांतिनाथ मंदिर की प्रशस्ति में इन शब्दों में किया गया है कि ''वागड़ प्रदेश के स्वामी वीराधिवीर गोपीनाथ ने गुजरात के मद्‌मत स्वामी की अपार सेना को नष्ट कर उसकी संपत्ति छीन ली।'' वागड़ में भीलों की संख्या अत्यधिक थी और वो उद्दंड थे, महारावल गोपीनाथ ने उनकी पालों पर अभियान कर उन्हें विजित किया और वागड़ से भीलों के उपद्रव को मिटा दिया। महारावल गोपीनाथ के समय के अनेक शिलालेख मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि महारावल गोपीनाथ सोमनाथ के बहुत बड़े भक्त व दानी शासक थे। उन्होंने अनेकों मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया। उन्होंने डूंगरपुर में गोपसागर तालाब और गोपपोल नामक दरवाजे का निर्माण करवाया। महारावल गोपीनाथ के बाद बागड़ के स्वामी उनके पुत्र सोमदास हुए।

महारावल सोमदास के समय मांडू के सुल्तान महमूद ने 1459 ई. में अपने पुत्र शहजादे ग्यासुद्दीन को मेवाड़ पर आक्रमण के लिए भेजा। कुंभलगढ़ की नाकाम घेराबंदी के बाद उसने डूंगरपुर पर आक्रमण किया, मुस्लिम इतिहास-कारों के अनुसार उसने सोमदास से शुल्क लेकर संधि की व वापिस लौट गया लेकिन ख्यातों व जनश्रुतियों के अनुसार उसे अभियान में असफलता का सामना करना पड़ा व लौटना पड़ा। मालवा का सुल्तान बनने के बाद ग्यासुद्दीन जब मेवाड़ पर आक्रमण (रायमलजी के समय) के लिए जा रहा था तब उसने डूंगरपुर पर भी आक्रमण किया तब वीलिया के पुत्र रातकाला ने अपने कर्तव्य का पालन करते हुए ग्यासुद्दीन की सेना को अत्यधिक क्षति पहुँचाते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। ग्यासुद्दीन को इस अभियान से भी कोई लाभ नहीं पहुँचा। महारावल सोमदास के समय के अनेक शिलालेख मिलते हैं जिनसे उनके शासनकाल के समय की जानकारी मिलती है। जिनमें वीलिया गाँव की बावड़ी का शिलालेख, आसोड़ा गाँव का शिलालेख, तलवाड़ा का शिलालेख, अचलगढ़ में जैन मन्दिर का शिलालेख, आंतरी गाँव की प्रशस्ति आदि प्रमुख है। महारावल सोमदास के बाद उनका पुत्र गंगदास (जिसे गांगेय ओर गांजा भी कहते थे) बागड़ के स्वामी हुए। महारावल आसकरण के समय के एक शिलालेख में उल्लेख है कि ईडर के स्वामी भाण ने 18,000 सैनिकों के साथ डूंगरपुर पर आक्रमण किया तब महारावल गंगदास ने उसका कड़ा प्रत्युत्तर दिया उनके पराक्रम के समक्ष ईडर को पराजय का मुख देखना पड़ा, भाण युद्ध में घायल हुआ और उसकी सेना तितर-बितर होकर युद्ध क्षेत्र से भाग खड़ी हुई। ●

मन की शक्ति

– महावीरसिंह हरदासकावास

मन कोई वस्तु नहीं है जिसे हम भौतिक रूप से देख सकें। मन एक शक्ति है, एक ऊर्जा है, और उसमें अपार सामर्थ्य है। ऐसे मन का स्थान हमारे मस्तिष्क (ब्रेन) में होता है, जो हमारे सिर के अंदर स्थित है। इसी के माध्यम से हम सोचते हैं, और यही सोच इंसान की पहचान होती है।

मन की शक्ति का विषय मनोविज्ञान से जुड़ा है। श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक पूज्य तन सिंह जी मनोविज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने इसी के आधार पर संघ की नींव रखी थी। अब हम इस विषय पर थोड़ा और ध्यान देते हुए अधिक ज्ञान प्राप्त करेंगे।

मन के दो प्रकार :

मन को दो भागों में बांटा गया है :

1. चेतन मन (Conscious Mind) यह वह मन है जिसे हम जागृत अवस्था में अनुभव करते हैं। इसकी शक्ति केवल 10% मानी जाती है।

2. अवचेतन मन (Subconscious Mind) यह मन हमें दिखाई नहीं देता, लेकिन इसका अस्तित्व होता है और इसकी शक्ति 90% होती है।

हमारी स्मृति, आत्मिक अनुभव, और परमात्मा से जुड़ाव सब अवचेतन मन में स्थित होते हैं। यही हमारा दिव्य मन है। इसमें एक अलौकिक शक्ति जुड़ी होती है जिसे हम परमात्मा कह सकते हैं।

वास्तव में हमारा अवचेतन मन ही हमारी आत्मा है। जब कोई इंसान मृत्यु को प्राप्त करता है, तो वह क्षण होता है जब उसका अवचेतन मन कार्य करना बंद कर देता है। शरीर की सारी आंतरिक क्रियाएं जैसे हृदय गति, श्वास आदि अवचेतन मन के द्वारा संचालित होती हैं। जब यह रुक जाती हैं, तो इंसान को मृत कहा जाता है।

मन की शक्ति का प्रयोग :

जब हमें कोई समस्या का समाधान चाहिए, तो हमें बाहर किसी के पास जाने के बजाय अपने अवचेतन मन में झांकना चाहिए। इसमें देवी शक्ति का वास है, और वही हमें हर संकट से उबार सकती है।

चेतन मन केवल जागृत अवस्था में कार्य करता है, जबकि अवचेतन मन 24 घंटे कार्यशील रहता है। कोई भी कार्य करने का आदेश पहले चेतन मन में जाता है, और फिर वह उसे अवचेतन मन को भेजता है। लक्ष्य निर्धारण चेतन मन करता है, और लक्ष्य की पूर्ति अवचेतन मन करता है।

इसलिए, यदि हम अपने लक्ष्य तक जल्दी और सहजता से पहुंचना चाहते हैं, तो हमें अवचेतन मन का प्रयोग करना चाहिए जो एक शक्ति का अद्भुत भंडार है।

मन की शक्ति को कैसे बढ़ाएं?

जिस प्रकार हम शरीर की शक्ति के लिए आहार और व्यायाम का सहारा लेते हैं, उसी तरह मन की शक्ति बढ़ाने के लिए भी दो चीजें आवश्यक है:

1. मन का आहार
2. मन की कसरत (व्यायाम)

1. मन का आहार

सकारात्मक विचार ही मन का श्रेष्ठ आहार है।

सकारात्मक बोलना

सकारात्मक पढ़ना

सकारात्मक सुनना

इन सबसे हमारे मन को ऊर्जा मिलती है।

हमें हमेशा सकारात्मक सोचना चाहिए और नकारात्मक बातों से दूर रहना चाहिए। परिवार में भी हमेशा प्रेरणादायक

और हौसला बढ़ाने वाली भाषा का प्रयोग करें। जैसे किसी को तू कुछ नहीं कर सकता कहने की बजाय, तू बहुत आगे बढ़ सकता है कहै।

2. मन की कसरत

मन को जागृत और मजबूत करने के लिए तीन प्रमुख अभ्यास हैं।

(i) विश्राम (Relaxation):

मन को आराम देना आवश्यक है। अधिक विचारों से बचें, और वे कार्य करें जो आपको शांति दें।

(ii) चित्रांकन (Picturization):

अपने लक्ष्य को चित्र के रूप में मन में देखें। मानिए कि वह पूरा हो चुका है और आप उस पर काम कर रहे हैं।

(iii) ध्यान (Meditation):

ध्यान की अवस्था में बैठकर विचारशून्य स्थिति प्राप्त करें। यह अवचेतन मन को सशक्त करता है और लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होता है।

अवचेतन मन के अद्‌भुत कार्य

1. हलचल और संवेदना : सोते समय भी शरीर की क्रियाएं जैसे साँस लेना, हृदय धड़कना आदि अवचेतन मन ही करता है।
2. त्वरित प्रतिक्रिया : जैसे अग्नि में पांव पड़ते ही तुरत खींच लेना यह अवचेतन प्रतिक्रिया होती है।
3. दूर संवेदना (टेलीपैथी) : अभ्यास से दूसरे के मन की बात जानने की शक्ति भी प्राप्त हो सकती है।
4. स्मृति (Memory) : अवचेतन मन में सारी जानकारी हार्ड डिस्क की तरह संग्रहित रहती है।
5. अंतरात्मा की आवाज : अंदर से आने वाली सही-गलत की अनुभूति, नैतिक निर्णय है। यह अवचेतन का संकेत है।
6. त्रिकाल ज्ञान : भूत, वर्तमान, भविष्य- सभी का संकेत अवचेतन मन दे सकता है।
7. EQ (Emotional Quotient) : सकारात्मक भावनाएं EQ को मजबूत करती हैं, जिससे जीवन में संतुलन आता है।
8. आयोजन क्षमता : अवचेतन मन की योजना सफल होती है।
9. अवसर निर्माण : यह मन नये अवसर उत्पन्न करता है, बस उन्हें पहचानने की जरूरत होती है।
10. सही निर्णय : सही समय पर उचित निर्णय लेने की क्षमता इसी मन की विशेषता है।
11. मानसिक घड़ी : बिना अलार्म के समय पर जाग जाना अवचेतन मन का कमाल है।
12. मानसिक कैलेंडर : समय पर काम की याद आना भी इसका गुण है।
13. हीलिंग पावर : जैसा सोचते हैं, वैसा शरीर बनता है। सकारात्मक सोच से बीमारी भी दूर हो सकती है।
14. इच्छा मृत्यु : मन की शक्ति से मृत्यु को भी इच्छा से प्राप्त किया जा सकता है।
15. आध्यात्मिकता (Spiritual Quotient-SQ) : मन, वचन, और कर्म की एकरूपता से जो दूसरों को प्रसन्न करें, वही सच्ची आध्यात्मिकता है।

स्पष्टीकरण : यदि हम अपने अवचेतन मन को पहचान लें और उसकी शक्ति का सही उपयोग करें, तो हम जीवन में हर लक्ष्य को पा सकते हैं, हर बाधा को पार कर सकते हैं। मन की शक्ति को जागृत कर हम स्वयं को और इस समाज को नई दिशा दे सकते हैं।

●

जो है वह भी भगवान का स्वरूप है और जो नहीं है, वह भी भगवान का स्वरूप है।

– स्वामी रामसुखदास जी

विचारों की जंजीरे

– रतन कंवर सेतरावा

हमारे जीवन की दशा व दिशा तय करने में बहुत बड़ा हाथ हमारे विचारों का रहता है। परन्तु यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि इन विचारों का स्रोत क्या है? विचार जब हमारे आन्तरिक चिन्तन को व्यक्त करते हैं तथा स्वभाविक व नैसर्गिक हैं तो वे स्वच्छ वायु प्रवाह जैसे हैं जिसमें कोई बनावटीपन नहीं है परन्तु इसके विपरीत अगर हमारे विचार थोपी हुई मानसिकता वाले हैं जिसमें हमारा कुछ भी नहीं और जो चली आ रही परिपाटी या उधार के ज्ञान से पोषित है तो ऐसे विचार हमारी मानसिक गुलामी के द्योतक हैं।

अधिकांशत: लोग विचारों की ऐसी ही जंजीरों से बंधे रहते हैं जो प्रत्यक्ष तो नजर नहीं आती और ना जिनका बोझ मालूम पड़ता है, ऐसे में ही हम इनको ढोये जा रहे हैं। लकीर के फकीर की तरह। विचार सिद्धान्तों या मान्यताओं के पीछे छुपे यथार्थ को समझे बिना उनको स्वीकार लेना व उनके प्रति कट्टर हो जाना किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति की प्रबुद्धता पर प्रश्नचिह्न लगाता है। अपनी एक प्रसिद्ध कृति में महान-दार्शनिक ओशो ने एक रोचक दृष्टान्त से तथ्य को भली प्रकार समझाने का प्रयास किया है जो इस प्रकार है-कि ''एक पूर्णिमा की रात छोटे से गाँव में एक अद्‌भुत घटना घट गई। कुछ जवान लड़कों ने शराबखाने में जाकर शराब पी ली और जब वे शराब के नशे में मदमस्त हो गए और शराबघर से बाहर निकले, तो चाँद की बरसती चाँदनी में उन्हें ख्याल आया कि नदी पर जाएँ और नौका-विहार करें।

रात बड़ी सुन्दर और नशे से भरी हुई थी। वे गीत गाते हुए नदी के किनारे पहुँच गए। नावें वहाँ बंधी थी। मछुए नाव बाँध कर घर जा चुके थे। रात हो गई थी। वे एक नाव में सवार हो गए। उन्होंने पतवार उठा ली और नाव खेना शुरू किया। फिर सुबह होने तक वे नाव को खेते रहे सुबह की ठंडी हवाएँ आई तब होश आया थोड़ा, किसी ने पूछा, कहाँ आ गए होंगे अब तक हम? आधी रात तक हमने यात्रा की है, न मालूम कितनी दूर निकल आए होंगे उतर कर कोई देख ले-किस दिशा में चल पड़े हैं, कहाँ पहुँच गए हैं? जो उतरा था वह उतर कर हंसने लगा। और उसने कहा कि दोस्तों, तुम भी उतर आओ। हम कहीं भी नहीं पहुँचे हैं। हम वहीं खड़े हैं, जहाँ रात नाव खड़ी थी।

वे बहुत हैरान हुए। रात भर उन्होंने पतवार चलाई थी और वहीं खड़े थे। उतर कर देखा तो पता चला नाव की जंजीरें किनारे से बंधी रह गई थी उन्हें वे खोलना भूल गए थे।

जीवन भी ऐसा ही है जीवन भर पतवार खेने पर, कहीं पहुँचता हुआ मालूम नहीं पड़ता है। मरते समय आदमी वहीं पाता है जहाँ वह जन्मा था। ठीक उसी किनारे पर जहाँ आँख खोली थी। वहीं आँख बन्द करते समय आदमी पाता है कि वहीं खड़ा हूँ। और तब बड़ी हैरानी होती है कि जीवन भर जो दौड़-धूप की थी उसका क्या हुआ? वह जो श्रम किया था कहीं पहुँचने को, वह जो यात्रा की थी वह सब निष्फल गई मृत्यु के क्षण में, आदमी वहीं पाता है जहाँ जन्म के क्षण में था। नाव कहीं बंधी रह गई किसी किनारे से।

हाँ, कुछ लोग सौभाग्यशाली मरते क्षण वहाँ पहुँच जाते हैं, जहाँ जन्म ने उन्हें नहीं बांधा। वहाँ जहाँ जीवन का-आकाश है, वहाँ जहाँ जीवन का प्रकाश है, जहाँ सत्य है, वहाँ जहाँ परमात्मा का मंदिर है, वहाँ पहुँच जाते हैं। लेकिन ये वे ही लोग हैं, जो किनारे से खूंटे से जंजीर खोलने की याद रखते हैं।

विचार हमें विवेकशील बनाते हैं। इसलिए ये स्पष्ट-तथ्यों और चिन्तन से जुड़े होने चाहिए। तभी हम परमेष्टि की प्राप्ति के लक्ष्य तक सहज पहुँच पाएँगे। संघ दर्शन को भी भलीभाँति समझकर जीवन में उतार पाएँगे। अत: आवश्यकता है कि हम विचारों से ''कूप मंडूक'' न बनें। देश-काल परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कर- विचारों की प्रासंगिकता को समझें।

●

ऐतिहासिक गढ़ चित्तौड़गढ़

– वीरेन्द्रसिंह तलावदा

वीरभूमि चित्तौड़ का महत्त्व शब्दों द्वारा प्रकट करना नितांत असंभव है, बहुत से वीर और वीरांगनाएँ इस गौरवशाली भूमि ने पैदा किये। इस पुण्य भूमि के कण-कण से किसी न किसी आदर्श वीर की जीवन गाथा का सबंध है। इसकी पवित्र रज में देश और धर्म की रक्षार्थ बलिदान देने वाले योद्धाओं का रक्त मौजूद है। चित्तौडगढ़ का इतिहास वृहद एवं रोमांचक है, वहीं यह भूमि अतीतकालीन चित्रों से भर देती है। वीरों का वीरत्य, स्त्रियों का सतीत्य, शिल्पकारों का शिलपत्य तथा शासकों की सांस्कृतिक रुचि संगठित प्रभाव उत्पन्न करती है।

चित्तौड़ का दुर्ग एक जीवित स्मारक है। दुर्ग की इमारतें सम्मान और आत्म-गौरव के आदर्शों का स्मरण कराती हैं। जहाँ स्त्रियों ने पुरुषों के बराबर साहस, वीरता और बलिदान का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। इसकी इमारतों की दीवारों पर शूरवीर राजपूत योद्धाओं के महान् कृत्यों की छाप विद्यमान है. यहां का प्रत्येक पत्थर कारुणिक प्रेम और वीरता, निष्ठा और त्याग की कहानी कहता है। इस पवित्र भूमि ने तो न जाने कितनी ही चुनौतियों को सहकर हमारे राष्ट्र-गौरव के हेतु को उन्नत रखा है। चित्तौड़ अपने राजभवनों और मंदिरों से अधिक बलिदानों और जौहरों के लिए विख्यात है। यहाँ असंख्य वीरों ने अपने धर्म और देश की रक्षा के लिए अनेक बार असिधारा रूपी तीर्थ में स्नान किया और यहाँ की वीरांगनाओं ने सतीत्व रक्षा के निमित्त धधकती हुई जौहर अग्नि में कई अवसरों पर अपने प्रिय बाल-बच्चों सहित प्रवेश कर जो आदर्श उपस्थित किया यह चिरस्मरणीय रहेगा। चित्तौड़ दुर्ग का दर्शन करना एक तीर्थ यात्रा जैसा पवित्र कार्य है।

वीरों ने स्वतंत्रता की सुरक्षा एवं समृद्धि के लिए निरन्तर बलिदान दिये। इसकी स्वतंत्रता को आक्रमणकारियों से बचाने के लिए अनेक प्रयास किये, इसके लिये तीन-तीन जौहर व शाके इसी दुर्ग में हुए हैं। इनमें प्रथम जौहर सन् 1303 ई. में महाराणी पद्मिनी के नेतृत्व में 16000 हजार महिलाओं ने व हजारों योद्धाओं ने शाका किया। दूसरा जौहर सन् 1535 ई. में राजमाता कर्मावती के नेतृत्व में हुआ और तीसरा जौहर सन् 1568 ई. में ठकुराणी फूलकंवर मेड़तणी के नेतृत्व में हुआ। सब मिट गये पर झुके नहीं। इस विशाल दुर्ग में आतताइयों ने हर बार भवनों, मंदिरों को तोड़ा फिर भी हर बार यह दुर्ग पुनर्जीवित हो उठा। यह भूमि बप्पा रावल, रावल खुमाण, महाराणी पद्मिनी, महाराणा हम्मीर, महाराणा लाखा, रावत चूण्डा, महाराणा कुम्भा, महाराणा सांगा, भक्त शिरोमणि मीराबाई मेडतणी, माँ पन्नाधाय, महाराणा प्रताप, वीर गौरा बादल, वीर जयमल-पत्ता, कल्ला राठौड़ आदि अनेक वीर-वीरांगनाओं की कर्मभूमि रही है। जिन्होंने अपनी आन-बान-शान नहीं मिटने दी। शत्रुओं ने इस पवित्र भूमि को पददलित करने की कोशिश की पर इन वीरों ने इस पुण्यभूमि पर उनको जमने ही नहीं दिया।

वीरों की यह क्रीड़ा-भूमि चित्तौडगढ़ अपने स्वातंत्र्य और गौरव के लिए विशिष्ट स्थान रखती है। शौर्य, बलिदान का प्रतीक यह विशाल दुर्ग चित्तौडगढ़ आज भी अपने प्राचीन कृत्यों की गौरवपूर्ण स्मृति को अपने हृदय में छिपाये देश के सच्चे सपूतों को देश-प्रेम की प्रेरणा देता है, इसके चप्पे-चप्पे में गौरवपूर्ण इतिहास के किस्से भरे पड़े हैं, जो हमें बतलाते हैं, महाराणा प्रताप के देशप्रेम को, महाराणा कुम्भा एवं महाराणा सांगा के शौर्य को, महारानी पद्मिनी के जौहर को, वीर गोरा-बादल के बलिदान को, दानवीर भामाशाह के उदार दातव्य को, माँ पन्नाधाय के महान्

बलिदान को, उन ज्ञात अज्ञात अनेकों शूरवीरों की निष्ठा और त्याग को जिसका सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में अन्य कोई दूसरा ऐतिहासिक उदाहारण ढूंढने से भी नहीं मिलेगा।

यह वीर-भूमि है, जहाँ हर वीर ने देश की स्वतंत्रता के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी। महाराणा प्रताप की एक ललकार पर जाने कितने योद्धाओं ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। ऐसी है यह चित्तौड़ की पावन व प्रेरणादायक भूमि। इसकी रक्तरंजित वीर गाथाएं सदैव प्रेरणास्त्रोत बनी रहेगी। राजपूती शान के लिये मशहूर चित्तौडगढ़, पश्चिमी राजस्थान एवं मेवाड़ का सदैव प्रहरी रहा है। यह गौरवमय बलिदानों का साक्षी है। तीन बार जौहर होने के बाद आज भी यह अभेद्य खड़ा है। चित्तौडगढ़ अपनी मर्यादा, राजपूतों के जीवन और उनकी अलौकिक वीरता एवं पराक्रम का एक मूक साक्षी है। यह शक्ति, भक्ति एवं त्याग का त्रिवेणी तीर्थ है। चित्तौड़ राष्ट्रीय गौरव, शौर्य एवं क्षत्रिय धर्म का महाकुम्भ है। यह हमारी इष्ट भावनाओं और आदर्शों का न केवल प्रतीक है, अपितु प्रेरणा स्त्रोत भी है। यह मीरां बाई का देश भी कहलाता है।

आज भी किले पर चढ़ते समय कोई भी व्यक्ति रोमांच का अनुभव कर सकता है। चित्तौड़गढ़ को अपने से जोड़ने पर उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि झंकझोर देती है। ज्यों-ज्यों आप ऊपर चढ़ते हैं अपने आपको ऊपर उठा हुआ पाते हैं। वैचारिक उद्‌बोधना होती है। आप दुर्ग की भूमि से सुगंध पाते हैं, दुर्ग की पावन भूमि से यह तिलक कर, युग पुरुषों तथा सन्नारियों के आगे नतमस्तक हो, श्रद्धा सुमन अर्पित करते समय गौरवान्वित अनुभव करते हैं। तथा कुछ कर गुजरने की प्रेरणा प्राप्त कर वह समय से उच्च होने की ठानते हैं। चित्तौडगढ़ के ऐतिहासिक और बलिदानी शौर्य की परम्परा से सम्पूर्ण विश्व परिचित है। चित्तौड़ के सिंहद्वारों, प्रासादों, देव मंदिरों, मठों, कीर्ति भवनों, स्मारकों एवं सामन्त सरदारों आदि के महलों की भव्यता इस दुर्ग में है।

इसी दुर्गराज के अधीश्वर हिन्दूपति मेद पाटेश्वरों ने हिन्दू धर्म और स्वतंत्रता स्थिर रखने के निमित्त सैकड़ों वर्षो तक, दिल्ली, मालवा और गुजरात के प्रबल व नामी बादशाहों से निरन्तर टक्कर लेकर चित्तौड़ और उसके आस-पास की भूमि को अपने और अपने योद्धाओं के रक्त से सिंचित किया, इस दुर्ग ने अपने प्रबल शत्रुओं के भी शत्रुओं को शरण देकर क्षात्र-धर्म और अपने वीरत्व का ज्वलन्त उदाहरण संसार के सम्मुख रखा। अनेक घोर आपत्तियाँ सहते हुए भी धर्म-पथ से कभी विचलित न हुए और अनेक बार बलवान शत्रुओं को पददलित ही नहीं किया अपितु बन्दी बनाकर उन्हें अपनी कैद में रखा और फिर उनको पुनः अपना राज्य देकर अनुपम वीरता और शौर्य का परिचय दिया। अपने राज्य चिन्ह में अंकित उनका परम सिद्धान्त ही यही है कि **''जो दृढ़ राखै धर्म को तिहि राखै करतार''**

चित्तौड़गढ़ मेवाड ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष का मस्तक है। वह जड़ है लेकिन चैतन्य से ओत-प्रोत है. यह जर्जर है लेकिन अब भी आभा से उसका एक-एक कण जगमग है, और यद्यपि यह कंकाल मात्र है लेकिन उसकी मांसलता अद्वितीय है। देश प्रेमियों और आजादी के दीवानों के लिए यह पुण्यभूमि है, तीर्थस्थल है। जीर्ण-शीर्ण अवस्था में भी यह स्वाधीनता का, बलिदान का और शूरवीरता का मूर्धन्य प्रतीक है। यह ऐसा अजस्त्र स्त्रोत है जिससे युगों-युगों तक भावुक देशभक्तों को बल मिलता रहेगा, जीवन मिलता रहेगा, देश का प्रत्येक व्यक्ति इसका नाम लेते ही फूल उठेगा।

अतीत की रूपहली सुनहली स्मृतियों में लिपटा हुआ यह दुर्ग मध्यकालीन इतिहास की अमृतनाभि है। इस धूमकेतु की धरती के वीर वीरागनाओं की चरणधूलि शिरोधार्य करने न जाने कितने लोग यहां लपके चले आते हैं। इतना ही नहीं इस तेजस्विनी भीतड़ों वाली अभयस्थली चित्तौड़ के सिंहद्वार पर सैकडों शब्द-शिल्पियों की ओजस्वी

वाणी में महामेरुदण्ड के रूप में सदैव दैदीप्यमान रहेंगे। भारत के इस प्राचीन दुर्गराज को केवल क्षत्रिय कुल ही नहीं अपितु हिन्दू जाति परम प्रतिष्ठा और आदर की दृष्टि से देखती है, इसका कारण यहां का एक-एक पत्थर उन वीरों के रक्त से रंगा हुआ आराध्य देवता के तुल्य है जिन्होंने स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा और अपनी स्वतन्त्रता के निमित्त विधर्मी शत्रुओं के मुकाबले में प्राण न्योछावर किये और यहीं सहस्रों आर्य महिलाओं ने अपने सती-धर्म की रक्षा के हेतु जौहर की प्रचण्ड ज्याला में अपने फूल से सुकुमार शरीरों की आहुति दे भारतीय नारी के पतिव्रत का आदर्श संसार के सन्मुख उपस्थित कर दिया। सच पूछा जाय तो देशभक्त वीरों के रुधिर से प्रक्षालन किया हुआ यहां का एक-एक रज कण हिन्दू संतान के लिए तीर्थराज की रेणुका से भी अधिक पवित्र है।

यहाँ के राजवंश के राजा स्वयं को सुप्रसिद्ध महाकाव्य राम चरित मानस में वर्णित भगवान श्रीरामचन्द्र की संतान मानते हैं। मेवाड़ के राजा सदैव अपने पूर्वजों की भांति, अच्छाई को कायम करने और बुराई का नाश करने के समान आदर्शों से प्रेरित हुए किन्तु वे जिस बुराई के विरूद्ध लड़े, मुस्लिम आक्रमणकारियों के रूप में प्रकट हुई। एक हजार वर्षों के दीर्घकाल तक उन्होंने मुस्लिम बादशाहों के आक्रमणों का मुकाबला किया एवं उनको खदेड़ा। मुसलमान असंख्य एवं उत्तरोत्तर आक्रमणों के बावजूद राजपूतों की अदम्य आत्म शक्ति को कभी दबा नहीं सके। सम्पूर्ण संघर्ष के दौरान मेवाड के राजा अपनी मातृभूमि के सम्मान की रक्षा करने में तथा मानव आत्मा के दिव्य आदर्शों को सुरक्षित रखने में सफल रहे। इस भांति चित्तौड स्वतन्त्रता-प्रेम का एक ज्वलन्त दृष्टान्त है।

ऊंची पहाड़ी पर निर्मित यह विशाल दुर्ग अपने ओजस्वी शूरवीरों की धरती के रूप में विश्व विख्यात है। वस्तुतः चित्तौड का दुर्ग चित्रांगद मोरी द्वारा छठी शताब्दी में निर्माण किया गया है, जिसको चित्रकूट, चत्रगढ़, चितउर नामों से भी जाना जाता है। एक ऐसी भी किवदंति है कि पांडवों के द्वितीय पुत्र भीम ने इसको स्थापित किया जिसने योगी निर्भयनाथजी को दिये वचन के अनुसार बारह घण्टों की अल्पावधि में इसको बनाने का बीड़ा उठाया था। आठवीं शताब्दी में मेवाड के गुहिलवंशीय राजा बप्पा रावल (कालभोज) ने मौर्यवंश के अंतिम राजा मान मोरी से यह किला हस्तगत किया था। इसके बाद 9वीं, 10वीं शताब्दी में यहाँ गुजरात के परिहारों के साथ ही मालवा के परमारों का आधिपत्य रहा था। सन् 1133 ई. में सोलकी जयसिह (सिद्धराज) ने यशोवर्मन को हराकर यहां कब्जा किया। सन् 1150 ई. में गुजरात के चालुक्य राजा कुमारपाल का आधिपत्य था। सन् 1115 ई में विग्रहराज चतुर्थ ने यहाँ शासन चलाया। सन् 1207 ई. में पुनः चालुक्यों एवं गुहिलोत वंश का प्रभाव स्थापित हुआ। सन् 1229 ई. में नागदा के पतन के बाद यहाँ जैत्रसिंह ने इसे राजधानी बनाकर शासन चलाया। इस पराक्रमी ने दिल्ली के सुल्तान इल्तुत्मिस को पराजित किया था। सन् 1303 ई में अल्लाउद्दीन खिलजी ने यहाँ रावल रतनसिंह से युद्ध किया जो चित्तौड़ का प्रथम जौहर-शाका कहलाया। अल्लाउद्दीन ने अपने पुत्र खिज खां को राज्य दे दिया। खिज खां ने वापसी पर चित्तौड का राजकाज जालौर के शासक कान्हडदेव के भाई मालदेव सोनगरा को सौंप दिया। मालदेव से बापा रावल के वंशज महाराणा हम्मीर ने पुनः अपने प्राचीन राज्य को सन् 1326 ई में हस्तगत किया। महाराणा हम्मीर बड़े पराक्रमी और दूरदर्शी थे उन्होंने यहाँ 50 वर्षों तक बड़ी योग्यता से शासन करते हुए अपना राज्य किया। महाराणा हम्मीर के प्रयत्नों के कारण चित्तौड का गौरव पुनः स्थापित हो सका। चित्तौड पर सन् 1433 ई. में इतिहास प्रसिद्ध महाराणा कुम्भा का राज्य प्रारम्भ हुआ। ये महाप्रतापी, कलामर्मज्ञ एवं संगीतशास्त्री थे। महाराणा कुम्भा का राज्य मेवाड का स्वर्णकाल कहलाता है। मेवाड़ के अनेकों भव्य प्रासाद, अजेय दुर्ग और

ऐतिहासिक स्मारक इनकी देन है। महाराणा कुम्भा के बाद सन् 1509 ई में महाराणा सांगा का शासन और भी अधिक शक्तिशाली तथा गौरव अर्जित करने वाला था। महाराणा सांगा परमवीर, दूरदर्शी तथा कुशल प्रशासक थे। इनके राज्यकाल में मेवाड राज्य का विस्तार गुजरात, मालवा और बयाना तक हुआ। क्रमशः सन् 1537 ई. में महाराणा उदयसिंह, सन् 1572 ई. में महाराणा प्रताप, सन् 1597 ई. में महाराणा अमरसिंह, सन 1652 ई. में महाराणा राजसिंह, सन् 1884 ई. में महाराणा फतेहसिंह आदि मेवाड के शासक हुये। कुछ वर्षों तक यह दुर्ग मुगलों के अधीन भी रहा किन्तु अन्ततः चितौड़ दुर्ग बप्पा रावल (734 ई.) से महाराणा भूपालसिंहजी (18 अप्रैल 1948 ई.) तक गुहिलोत (सिसोदिया) राजवंश का बारह शताब्दियों के काल तक प्रधान गढ़ बना रहा।

चित्तौड़गढ़ का दुर्ग एक भीमकाय मत्स्य के आकार का है, जिसका मुख उत्तर में लाखोटाबारी पर हैं एवं पूँछ चित्तौड़ बुर्ज पर है। पहाड़ी के शिखर भाग की भूमि पठारी है, जो दुर्ग के आयोजन की दृष्टि से बहुत उपयुक्त है। इसके मध्यवर्ती अधिकांश भाग में एक लम्बा और छिछला गोलाकार गर्त बन गया है, जिसके चारों ओर की भूमि दुर्ग के भीतर तथा बाहर ऊँची उठी हुई है. जिससे प्राकृतिक दृष्टि से पहाड़ी के शिखर की संरचना पानी संचय के योग्य हो गई है। इस मध्यवर्ती गर्तीय भाग में जलाशय बना लिये गये हैं. जिनसे पानी की स्थायी आपूर्ति सुनिश्चित रहती थी। इस पर छोटे-बड़े 84 जलाशय हैं, जिनमें से 20 में सम्पूर्ण वर्ष जल रहता है, यह पवित्र स्थान होने से लगान (खेतीकर) माफ था।

दुर्ग की प्राचीरों की अधिकतम ऊँचाई 40 फुट है। प्राचीर में पाँच-पाँच फुट पर छिद्र (मोरबे) हैं। ये छिद्र दो प्रकार के हैं, एक छिद्र समीप के निशाना लगाने के लिए और दूसरा दूरी पर निशाना लगाने के लिए। दुर्गों में राजप्रासाद के परकोटे ऊँचे होते थे, दुर्ग के प्राचीरों पर अर्द्धवृताकार कंगूरे बनाए जाते थे। जो दुर्ग की शोभा ही नहीं बढ़ाते थे वरन इनके पीछे से सैनिक इनमें बने सूराखों से तीरों, तोडदार बंदूकों की गोलियों से आक्रमणकारियों पर बौछार करते थे एवं गोलाकार, वर्गाकार बुर्ज बनाए जाते थे, तोपों के प्रचलन से पहले तीरदाज बुर्जो पर बैठकर कंगूरों में बने सुराखों से आक्रमणकारियों पर तीरों की वर्षा करते थे। तोपों के प्रचलन के बाद इन बुर्जी पर तोपें रखी जाती थी। दुर्ग के किवाड़ों को लम्बे समय तक तेल में डुबोया जाता था, फिर लोहे के लम्बे तेज व नोकदार कोणकील लगाए जाते थे ताकि हाथियों के आक्रमण से किवाडों को क्षति न पहुँचे। हाथी अपने दाँत टूटने के डर से कोणकीलों से बचते थे। दुर्ग के प्राचीरों में छोटी-छोटी बारियां (खिडकियां) हैं, जिनको आपातकाल में प्रयोग करते थे। दुर्ग के प्रवेश द्वार पर मंदिर बनाए जाते हैं, उपर्युक्त सभी विशेषताओं को चित्तौड दुर्ग में परिलक्षित किया गया है। चित्तौड दुर्ग को महागिरिदुर्ग की श्रेणी में रखा जा सकता है। चितौड दुर्ग की विशालता एवं स्थापत्य अनुपम है, अतः लोक कहावतों में दुर्ग के लिए कहा गया है- **'गढ़ों में गढ़ चित्तौड़गढ़ और बाकी सब गढ़ैया।'**

चित्तौडगढ़ राजस्थान के दक्षिणी पूर्वी पठारी भाग में अरावली की पहाडियों के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। तथा इस स्थान से 74 38'41 पूर्वी देशान्तर तथा 24 53'18 उत्तरी अक्षांश रेखाएं गुजरती हैं। चित्तौड़ दुर्ग समुद्र तल से 563 मीटर (1847.11 फीट) ऊँचे तथा आसपास की भूमि से 152 मीटर (500 फीट) ऊँचे उठे हुए पठार पर निर्मित है। इसकी लम्बाई लगभग साढ़े तीन मील (5.6 कि. मी.) तथा चौड़ाई कहीं-कहीं आधा मील (0.8 कि मी.) कहीं पर 1/4 मील (0.4 कि.मी.) के लगभग हैं। इसका क्षेत्रफल 305 हेक्टेयर है, 753 एकड़ (1412 बीघा) तथा दुर्ग की परिधि, तलहटी पर आठ मील (13 कि मी.) के आस-पास है, प्रथम द्वार पाडलपोल से किले को 7 मील घूमना पड़ता है।

तीर्थराज चित्तौड़गढ़ के बारे में कविराज श्यामनारायण पाण्डेय ने कहा है कि-**मुझे न जाना गंगा सागर, मुझे न जाना रामेश्वर काशी। तीर्थराज चित्तौड़ देखने को मेरी आँखे प्यासी।।**

ऐतिहासिक किले, महल, युद्ध-स्थल, छतरियां, देवलियां आदि केवल जड़ व मूक स्मारक नहीं हैं, अपित प्रेरणा के पुंजीभूत हैं, हमारे आसपास बने इन स्मारकों को पूजना चाहिए एवं हमारी परम्परा एवं स्थानीय वास्तुकला को ध्यान में रखकर इनका जीर्णोद्धार कराना चाहिए ये हमारी गौरवपूर्ण थाती है, इनको अवश्य ही संरक्षित करना ही होगा।

●

पृष्ठ 19 का शेष

आत्म संयम

चाहिये। मानव जीवन में संयमशीलता की आवश्यकता को सभी विचारशील व्यक्तियों ने स्वीकार किया है। संसार के प्रत्येक क्षेत्र में, जीवन के प्रत्येक पहलू पर सफलता, विकास एवं उत्थान की ओर अग्रसर होने के लिए संयम की भारी उपयोगिता है। आत्म संयम के पथिकों को प्रतिदिन अपना आत्म निरीक्षण करते रहना अत्यावश्यक है। अपने विचारों तथा कृत्यों के बारे में सदैव सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना चाहिये। विचारों तथा कार्यों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जैसे विचार होंगे वे ही क्रिया रूप में अवश्य परिणित होंगे। इसलिए बुरी विचारधारा से सदैव बचना चाहिये। धैर्य और साहस के साथ निरंतर प्रयत्न करने पर अवश्य ही संयम साधना पूर्ण होती है और मनुष्य अपने लक्ष्य में सफल हो जाता है।

''लूवाँ रा लपका, आँधी रा झपका, उनाला कितराई बीत्या। आँसूड़ा टपका, हिवड़ै ने बरसा, छोटा थकाँ ने सींच्या।। बै भूल गया उपकार-थारी अब पारख होसी रे। मन हार हियो मत हार, थारी अब पारख होसी रे। रख आँख्याँ में थोड़ो खार, थारी अब पारख होसी रे।।''

●

पृष्ठ 24 का शेष

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों का योगदान

कहा। इन्दौर का होल्कर अंग्रेजों से पराजित होकर जोधपुर की शरण आया। यहां के राजा मानसिंह अंग्रेज विरोधी थे। नागपुर का भौंसला मधुराजदेव जब अंग्रेजों से पराजित हुआ तो वह रणजीतसिंह की शरण में गया परन्तु रणजीत सिंह भी आनाकानी करने लगा तब मानसिंह जोधपुर ने उसे अपने पास रखा।

लार्ड विलियम बेंटिंग ने वि.सं. 1888 (ई. 1831) में जब राजाओं का दरबार किया तो राजा मानसिंह उपस्थित नहीं हुए और न ही उन्होंने राजाओं के साथ हुई संधि का अनुमोदन किया तथा अंग्रेजी सरकार को खिराज भी नहीं दिया। समकालीन कवि करणीदान बारहठ ने मानसिंह के ऐसे कार्यों की प्रशंसा की है।

शेखावाटी में ई.सं. 1833-34 के लगभग फोरेस्टर के नेतृत्व में शेखावाटी ब्रिगेड उन लोगों के दुर्ग आदि तोड़ने लगी जो अंग्रेज विरोधी गतिविधियाँ करते थे। शेखावाटी ब्रिगेड के साथ यहाँ के शेखावतों की झड़पें हुआ करती थी। क्रांतिकारी धीरसिंह शेखावत गुड़ा लड़ते हुए मारा गया तो फोरेस्टर ने उसका सिर मंगवाकर लटका दिया तब एक वीर मीणा युवक ने एक हिस्से पर जबरदस्ती अधिकार कर लिया। इससे जयपुर नरेश रामसिंह और उनकी प्रजा बहुत नाराज हुई तथा 4 जून, 1835 के दिन अंग्रेज रेजीडेन्ट पर आक्रमण किया और उसके सहायक ब्लैक को मौत के घाट उतार दिया।

(क्रमशः)

अपनी बात

स्वाध्याय का अर्थ है स्वयं का अध्ययन। पूज्य भगवान सिंह जी ने स्वयं के अध्ययन को गरिमा प्रदान की और बढते जीवन के साथ-साथ इस स्वयं के अध्ययन को भी बढाते रहे। स्वयं का अध्ययन सारे मनोविश्लेषण की आधारभूमि है। स्वयं में क्या-क्या है इसका गूढ परिचय किसी और के द्वारा नहीं स्वयं के द्वारा ही संभव है। किसी और के द्वारा इसलिए नहीं कि स्वयं की अतुल गहराइयों में किसी दूसरे का कोई प्रवेश नहीं होता।

हम दूसरे व्यक्ति को केवल उसकी परिधि से ही जान सकते हैं। उसकी गहराइयों में, उसके अंतस्तल में प्रवेश का कहीं कोई द्वार नहीं होता। हम दूसरे के व्यवहार को ही जान सकते हैं, उसके अंतस को नहीं। दूसरा क्या करता है यह तो हम अध्ययन कर सकते हैं, लेकिन दूसरा क्या है इसका बाहर से हम अध्ययन ही नहीं कर सकते।

जितना ज्यादा मनुष्य सभ्य हो गया है, उतना ही धोखा गहरा हो गया है। अंतस कुछ होता है, आचरण कुछ होता है। इसलिए आचरण को देखकर कोई खबर नहीं मिलती है। सुसंस्कृत और सुसम्य आदमी कहा ही उसी को जाता है जिसके आचरण का जाल इतना बड़ा है कि उसके अंतस का पता ही नहीं चलता। उसके ऐसे आचरण में हमें कोई कुंजी नहीं मिलती, अंतस के ताले की चाबी नहीं मिलती। व्यवहार प्रकट नहीं करता, छिपाता है। आचरण अंतस की अभिव्यक्ति नहीं, अंतस का छिपाव बन गया है। बोला भी जाता है, जो हम सोचते हैं उसको छिपाने के लिए। चेहरे पर जो दिखाई पड़ता है, वह वह नहीं होता जो आत्मा में उठता है।

स्वाध्याय का इसलिए पहला अर्थ है कि हम अपने अंतस से स्वयं ही परिचित हो सकते हैं। दूसरे हमारे आचरण को ही जान सकते हैं और आचरण से जाना गया उसका अध्ययन ज्यादा से ज्यादा अनुमान ही होता है। लेकिन साक्षात, सीधा ज्ञान तो हम अपने भीतर स्वयं का ही कर सकते हैं।

हम स्वयं ही हमारी गहराइयें में हैं अकेले, वहाँ किसी दूसरे का प्रवेश नहीं है। इसीलिए स्वाध्याय-स्व का अध्ययन। लेकिन हम स्वयं भी वहाँ अपनी गहराई में नहीं जाते। हम खुद भी अपने से बाहर ही जीते हैं। हम इस ढंग से जीते हैं कि हम भी अपने आचरण से ही परिचित होते हैं, अपनी आत्मा से परिचित नहीं होते। हम स्वयं को भी जानते हैं तो दूसरों की दृष्टि से जानते हैं। अगर दूसरे हमें अच्छा आदमी कहते हैं तो हम सोचते हैं कि हम अच्छे आदमी हैं। और दूसरे बुरा कहते हैं तो बड़ी पीड़ा पहुँचाते हैं।

स्वयं का सीधा, प्रत्यक्ष अनुभव हमारा अपना नहीं है। अन्यथा सारी दुनिया हमें बुरा कहे मगर मैं अपने भीतर जानता हूँ कि मैं अच्छा हूँ, तो कोई अन्तर नहीं पड़ता। उस सारी दुनिया के बुरे कहने से जरा-सा कांटा भी नहीं चुभता कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन मुझे तो मेरा पता ही नहीं है कि मैं कौन हूँ। मुझे तो वही पता है जो लोगों ने मेरे बाबत कहा है।

लोग मेरे सम्बन्ध में जानें बाहर से, यह तो उचित है, लेकिन मैं भी अपने सम्बन्ध मं जानू बाहर से, यह एकदम ही खरतनाक है। अनुचित ही नहीं, खतरनाक भी है, स्वाध्याय का अर्थ है स्वयं का साक्षात्कार। अपने ही आमने-सामने खड़ा हो जाना।

पूज्य भगवानसिंह जी कैसे हैं यह दूसरे लोग तरह-तरह की बातें करते ही रहते थे, पर उन्होंने उन लोगों की कल्पना की परवाह कभी नहीं की। वे निरन्तर अपने आपकी गहइरायों में उतरकर स्वयं को देखते रहे। परवाह यह नहीं रही कि लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं, मुझे कैसे आंकते हैं, परवाह सदैव यही रही अपनी गहराइयों को देखूं, अपने आप की पहचान करूँ। यही प्रक्रिया स्वाध्याय यज्ञ है। ●

श्री क्षत्रिय युवक संघ के
चतुर्थ संघ प्रमुख एवं संरक्षक

पूज्य भगवान सिंह जी रोलसाबसर

को शत् शत् नमन।

राष्ट्रवादी जनलोक पार्टी (सत्य)

मा.श्री शेर सिंह राणा, राष्ट्रीय अध्यक्ष

विजय सिंह गौरीसर प्रदेशाध्यक्ष (राजस्थान)

मो. 9680509710

भावपूर्ण श्रद्धांजलि

समाज के महान पुरोधा, विद्वान लेखक, समाज व संगठन को समर्पित श्री क्षत्रिय युवक संघ के संरक्षक

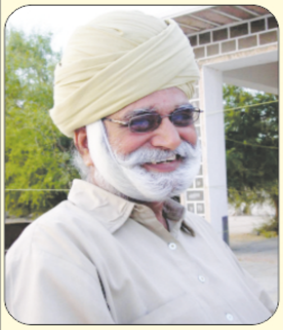

श्री भगवान सिंह जी रोलसाहबसर

के देवलोकगमन पर हम सभी सादर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

ऊँ शांति ऊँ शांति ऊँ शांति !

-: श्रद्धावनत :-

नगेन्द्र सिंह बगड़
अध्यक्ष

सुदर्शन सिंह सुरपुरा
सचिव

महेन्द्र सिंह जैसलाण (उपाध्यक्ष), जालिम सिंह हुडील (संयुक्त सचिव), डॉ0 अभय सिंह राठौड़ (शिक्षा सलाहकार), श्याम सिंह मंढा (कोषाध्यक्ष), जालिम सिंह आसपुरा, दिलीप सिंह छापोली, गुलाब सिंह मेड़तिया, सम्पत सिंह धमोरा (कार्यकारिणी सदस्य)

श्री भवानी निकेतन शिक्षा समिति, महाराव शेखाजी सेतु, सीकर रोड, जयपुर

जुलाई सन् 2025
वर्ष : 62, अंक : 07

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2023-25

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

श्री संघशक्तिप्रकाशन प्रन्यास (स्वत्वाधिकारी) के लिए मुद्रक एवं प्रकाशक राजेन्द्र सिंह राठौड़ द्वारा भास्कर प्रिंटिंग प्रेस, डी बी कोर्प लिमिटेड, प्लोट नंबर-01, मंगलम कनक वाटिका के पीछे, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, रेल्वे क्रोसिंग के पास, बिलवा, शिवदासपुरा, टोंक रोड, जयपुर (राजस्थान)-303903 (दूरभाष -6658888) से मुद्रित एवं ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर- 302012 (दूरभाष- 2466353) से प्रकाशित। संपादक राजेंद्र सिंह राठौड़। Email : sanghshakti@gmail-com | Website : www-shrikys-org